पाठावली

हिंदी साहित्य एवं भाषिक अनुप्रयोग डिप्लोमा (400)

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

पाठावली

हिंदी साहित्य एवं भाषिक अनुप्रयोग डिप्लोमा
(400)

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रथम संस्करण : 2006

मूल्य : रुपए 60·00

केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005 द्वारा प्रकाशित और
मै. परीक्षा समिति प्रेस, आगरा-282005 से मुद्रित।

Pathwali [Hindi Sahitya Evm Bhashik Anuprayog Diploma (4th)] Book No. 32 (BVP)

प्रथम प्रारूप

BVP CHECKED DEC 2017

संकल्पना एवं संयोजन
प्रो. अश्वनी कुमार श्रीवास्तव
परामर्श
डॉ अरविन्द कुलश्रेष्ठ
अतिथि सहयोगी
प्रो. रामवीर सिंह
प्रो. चतुर्भुज सहाय
प्रो. रामलाल वर्मा

विभागीय सहयोगी
डॉ. देवेंद्र शुक्ल
डॉ. रमा सूद
डॉ. इंदिरा सिंह
डॉ. ज्योत्स्ना रघुवंशी
डॉ. वीना माथुर
सुश्री पुष्पा बूलचंदानी

द्वितीय संशोधन

प्रो. वशिनी शर्मा	:	प्रो. रामवीर सिंह
डॉ. अरुण चतुर्वेदी	:	डॉ. मीरा सरीन
डॉ. सुशीला थामस	:	डॉ. पुष्पा बूलचंदानी
डॉ. ज्योत्स्ना रघुवंशी	:	डॉ. वीना माथुर

तृतीय संशोधन

आगरा मुख्यालय		**दिल्ली केंद्र**
प्रो. अश्वनी कुमार श्रीवास्तव	:	प्रो. श्रीश चंद्र जैसवाल
प्रो. अरुण चतुर्वेदी	:	डॉ. सुशीला थामस
प्रो. मीरा सरीन	:	डॉ. अपर्णा सारस्वत
डॉ. अल्पना शर्मा	:	डॉ. मंजू राय
		डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा
		डॉ. मनोरमा अग्रवाल

परामर्शदाता

प्रो. वी. रा. जगन्नाथन	प्रो. शंभुनाथ (निदेशक)
प्रो. चतुर्भुज सहाय	प्रो. रामवीर सिंह
प्रो. वशिनी शर्मा	डॉ. असगर वजाहत
डॉ. पुष्पा श्रीवास्तव	डॉ. अरुण कमल

भूमिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा संचालित एक स्वायत्तशासी शैक्षिक संस्था है, जहाँ हिंदी के द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा के रूप में अध्ययन-अध्यापन और प्रशिक्षण संबंधी कार्य संपादित किए जाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग केंद्रीय हिंदी संस्थान का एक महत्वपूर्ण विभाग है जहाँ प्रतिवर्ष विश्व के कोने-कोने से छात्र-छात्राएँ हिंदी भाषा और साहित्य तथा भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए आते हैं। इन छात्रों के लिए पाँच स्तरों के क्रमिक पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं-

1. हिंदी भाषा दक्षता प्रमाण-पत्र	(प्रथम स्तर - कक्षा 100)
2. हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा	(द्वितीय स्तर - कक्षा 200)
3. हिंदी भाषा दक्षता उच्च डिप्लोमा	(तृतीय स्तर - कक्षा 300)
4. हिंदी भाषिक अनुप्रयोग डिप्लोमा	(चतुर्थ स्तर - कक्षा 400)
5. हिंदी शोध डिप्लोमा	(पंचम स्तर - कक्षा 500)

हिंदी साहित्य से परिचित कराने के लिए विभिन्न कक्षाओं के लिए चुनी हुई रचनाओं का संकलन तैयार किया गया है। इन पाठ्यपुस्तकों के लिए पाठों का चयन करते समय निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान रखा गया है -

1. पाठों में भारतीय संस्कृति की सामासिकता और उसकी उज्ज्वल छवि प्रतिबिंबित हो।

2. पाठ विभिन्न युगों के साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हों।

3. पाठ विभिन्न प्रवृत्तियों के रचनाकारों का प्रतिनिधित्व करते हों।

4. पाठ विभिन्न विधाओं से संबंधित हों।

5. पाठ भाषा, विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से विदेशी छात्रों के लिए कठिन न हों।

सभी पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त की गई रचनाओं का उपयोग विशुद्ध रूप से शैक्षिक दृष्टि से किया जा रहा है। इन पुस्तकों को अभी तक सभी कक्षाओं में टंकित रूप में प्रयुक्त किया जा रहा था तथा विभिन्न कारणों से इनके प्रकाशन की स्थिति नहीं बन पा रही थी। इस दृष्टि से प्रो. शंभुनाथ, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा साधुवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस कार्य को वरीयता दी। पाठ्यपुस्तकों के इन संशोधित संस्करणों के निर्माण में सहयोगी सभी महानुभावों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

– प्रो. अश्वनी कुमार श्रीवास्तव

विषय सूची

पाठ – 1

कबीरदास

(दोहे)

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास॥

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़–गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हात सहार दे, बाहर बाहै चोट॥

धीरे–धीरे रे मना, धीरज से सब होय।
माली सींचैं सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से, लोह भसम ह्वै जाय॥

नैना अंतरि आव तूँ, ल्यूँ हौं नैन झपेउँ।
ना हौं देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ॥

(पद)

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े गलि जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधौ, सतगुरु नाम ठिकाना है।।

शब्दार्थ

गंधी	–	सुगंध (Perfume) बेचने वाला
गढ़ना	–	बनाना
खोट	–	दोष
बिराना	–	पराया
गलना	–	पिघलना, नष्ट होना
झाड़	–	झाड़ी, bush
झाँखर	–	सूखे पेड़
बरि जाना	–	जल जाना
बास	–	गंध (Smell)
काढ़ना	–	निकालना (To remove)
बाहै	–	मारता है
हाय	–	दुख भरी श्वास
झपेउँ	–	बंद करना, मूँदना
पुड़िया	–	कागज़ की छोटी थैली (Packet)
बाड़ी	–	Hedge

प्रश्न :–

1. कबीरदास की भाषा पर एक निबंध लिखिए।
2. "कबीर कवि से पहले एक समाज सुधारक हैं"– अपने विचार व्यक्त कीजिए।

पाठ – 2

सूरदास

(पद)

मैया मोरी कमरी चोरी लही।
मैं बन जात चरावन गैया, सूनी देख गही॥
एक कहै कान्हा तेरी कामर यमुना जात बही।
एक कहै श्याम तेरी कामर सुरभी खाय गयी॥
एक कहत नाचो मेरे आगे लै देहौं और नई।
'सूरदास' जसुमति के आगे अँसुअन डार दई॥

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
सम्दरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ
सो दुविधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, 'सूर' सुमिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजिये, कै प्रन जात टरौ।

ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस॥
इंद्री सिथिल भईं केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
'सूर' हमारे नंद नंदन बिनु, और नाहिं जगदीस॥

शब्दार्थ

कमरी	–	कंबल
गही	–	ले लिया
सुरभी	–	गाय
पारस	–	अपने स्पर्श से लोहे को सोना बनाने वाला पत्थर
हुतो	–	था
कोटि बरीस	–	करोड़ों वर्ष
रसिक	–	कृष्ण
कामर	–	कंबल
बधिक	–	मांस विक्रेता (Butcher), कसाई
कंचन	–	सोना, स्वर्ण
माया	–	काल्पनिक
केसव	–	केशव, कृष्ण
अटकि रही	–	रुकी रही

प्रश्न :–

1. सूरदास की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2. 'सूरदास का वात्सल्य चित्रण अद्‌वितीय है'– विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

पाठ – 3

तुलसीदास

विनय पत्रिका
(पद)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति–सुर सरिता, आस करत ओसकन की॥
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥
ज्यों गच–काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपा निधि जानत हौं गति मन की।
'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

रामचरितमानस–केवट प्रसंग

चौपाई

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्र पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥
मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तैं न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहि जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

(छंद)

पद कमल धोई चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दशरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहों।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं।

(सोरठा)

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

शब्दार्थ

सुरसरिता	–	गंगा नदी
चातक	–	एक प्रकार का पक्षी
मति	–	बुद्धि
लोचन	–	आँख
आतुर	–	व्यग्र, व्याकुल
आनन	–	चेहरा
कुचाल	–	बुरी आदतें
पठाए	–	भेजा
आना	–	लाया
रज	–	धूल
तरनिउ	–	नाव भी

कबारू	–	कारोबार, व्यवसाय
पखारना	–	धोना
चितई	–	देखकर
करुनाऐन	–	राम
परिहरि	–	छोड़कर
ओसकन	–	ओस की बूँदें
निरखि	–	देखकर
तृषित	–	प्यासा
गच–काँच	–	शीशे का फर्श (Floor)
सेन	–	बाज़ पक्षी (Hawk)
टूटत	–	आक्रमण करता है
पन	–	प्रण, वचन
केवट	–	नाव चलाने वाला
मरमु	–	भेद, रहस्य
मूरि	–	शक्ति
पदुम	–	कमल
उतराई	–	नदी पार ले जाने का किराया
आन	–	शपथ
बैन	–	वचन, बातें

प्रश्न:–

1. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।
2. तुलसीदास की भक्ति भावना के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

पाठ – 4

रहीम

(दोहे)

'रहिमन' धागा प्रेम को, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुरै, जुरै गाँठ पड़ जाय॥

'रहिमन' निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहे कोय॥

कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥

धन थोरो, इज्जत बड़ी, कहि 'रहीम' का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँहि समात॥

सब कोऊ सबसो करें, राम, जुहार, सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम॥

शब्दार्थ

चटकाय	–	प्रयत्नपूर्वक तोड़ना
अठिलैहें	–	हँसी उड़ाना
स्वाति	–	एक नक्षत्र का नाम
कुलवधू	–	घर की बहू, गृह लक्ष्मी
अटके काम	–	आवश्यकता पड़ना
राम जुहार	–	अभिवादन
गोय	–	छुपाकर
कदली	–	केला
भुजंग	–	साँप
कुल	–	वंश, परिवार
चिथड़न	–	फटे–पुराने वस्त्र

प्रश्न :–

1. पठित दोहों के आधार पर रहीम की नीति – विषयक विशेषताओं को बताइए।

पाठ – 5

रसखान

(सवैया)

मानुष हौं तो वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

शब्दार्थ

धेनु	–	गाय
गिरि	–	पहाड़
पुरंदर	–	इंद्र
बसेरा	–	निवास
कदंब	–	एक प्रकार का पेड़
ग्वारन	–	गायों के रखवाले
मँझारन	–	मध्य में, साथ में
खग	–	पक्षी
कालिंदी कूल	–	यमुना का तट

प्रश्नः–

1. कृष्ण के प्रति रसखान की भक्ति को वर्णित कीजिए।

पाठ – 6

मीरा बाई

(पद)

बसो मेरे नैनन में नँदलाल
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदायी भगत बछल गोपाल॥

आली म्हाँने लागे वृन्दावन नीको।
घर–घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप बिराजे मुकट धर्‌यो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको॥

शब्दार्थ

मोहिनी	–	मोहित करने वाली
सूरति	–	सूरत, शक्ल, आकृति
सुधारस	–	अमृत जैसे रसपूर्ण
उर	–	हृदय, वक्षस्थल
छुद्र	–	छोटी
कटि	–	कमर
सबद	–	ध्वनि, आवाज़
भगत बछल	–	भक्त वत्सल, भक्तों पर दया करने वाले
ठाकुर	–	विष्णु
बिराजें	–	बैठते हैं
कुंजन	–	उपवन
साँवरि	–	साँवले रंग की
अधर	–	होंठ
राजति	–	सुंदर लगना
बैजंती	–	एक प्रकार के फूल
घंटिका	–	घंटी
नूपुर	–	पायल
रसाल	–	रसपूर्ण
आलि	–	सखी
नीको	–	अच्छा
सिंघासण	–	सिंहासन
फीको	–	नीरस
नागर	–	चतुर

प्रश्न :–

1. मीरा की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

पाठ – 7

बिहारी

(दोहे)

सीस मुकुट कटि काँछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल॥

कोऊ कोटिक संग्रहो, कोउ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपद विदारन हार॥

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होति सुगंध॥

नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोइ।
जेतो नीचौ ह्वै चले, तेतो ऊँचों होइ॥

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहनि हँसे, दैन कहै नटि जाय॥

शब्दार्थ

काँछनी	–	कमर से नीचे पहनने का वस्त्र
संग्रहो	–	इकट्ठा करना

विपद	–	संकट
सुमति	–	सुबुद्धि
हींग	–	Asafoetida
गति	–	दशा
लालच	–	लोभ व आकर्षण
लुकाय	–	छुपाकर
बानिक	–	वेशरूप
कोटिक	–	करोड़
जदुपति	–	कृष्ण
विदारन हार	–	दूर करने वाले
धंध	–	कुचक्र
कपूर	–	Camphor
बतरस	–	बातचीत का सुख
लाल	–	कृष्ण
सौंह	–	कसम, शपथ
नटि जाय	–	मना करना

प्रश्न :–

1. बिहारी की काव्य कला का वर्णन कीजिए।

2. 'बिहारी के दोहों में प्रेम और सौंदर्य का वर्णन' : निबंध लिखिए।

पाठ – 8

चीफ़ की दावत

–भीष्म साहनी

आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ़ की दावत थी।

शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फ़ुर्सत न थी। पत्नी ड्रेसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए, मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पाउडर को मले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट–पर–सिगरेट फूँकते हुए, चीज़ों की फ़ेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ–जा रहे थे।

आख़िर पाँच बजते–बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल, सब बरामदे में पहुँच गये। ड्रिंक्स का इंतज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फ़ालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई–माँ का क्या होगा?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था। मिस्टर शामनाथ श्रीमती की ओर घूमकर अंग्रेज़ी में बोले–"माँ का क्या होगा?"

श्रीमती काम करते–करते ठहर गईं, और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं–"इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो। रात भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ।"

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल–भर सोचते रहे, फिर सिर हिलाकर बोले– "नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना–जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बंद किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खाकर शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे। इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।"

सुझाव ठीक था। दोनों को पसंद आया। मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं– "जो वह सो गईं और नींद में ख़र्राटे लेने लगीं, तो? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे।"

"तो उन्हें कह देंगे कि अंदर से दरवाज़ा बंद करलें। मैं बाहर से ताला लगा दूँगा। या माँ को कह देता हूँ कि अंदर जाकर सोएँ नहीं, बैठी रहें, और क्या?"

"और जो सो गईं, तो? डिनर का क्या मालूम कब तक चले। ग्यारह–साढ़े ग्यारह बजे तक तो तुम लोग ड्रिंक ही करते रहते हो।"

शामनाथ कुछ खीज उठे, हाथ झटकते हुए बोले–"अच्छी–भली यह भाई के पास जा रही थीं। तुमने यूँ ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी।"

"वाह ! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ? तुम जानो और वह जानें।"

मिस्टर शामनाथ चुप रहे। यह मौका बहस का न था, समस्या का हल ढूँढने का था। उन्होंने घूमकर माँ की कोठरी की ओर देखा। कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था। बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले–मैंने सोच लिया है– और उन्हीं कदमों से माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह–सिर लपेटे, माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ़्तर का बड़ा साहब घर पर आ रहा है, सारा काम सुभीते से हो जाए।

"माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।"

माँ ने धीरे से मुँह पर से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा, "आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम तो जानते हो, माँस–मछली बने तो मैं कुछ नहीं खाती।

"जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निबट लेना।"

"अच्छा बेटा।"

"और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"

माँ अवाक् बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे से बोलीं–अच्छा, बेटा।"

"और माँ, आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे ख़र्राटे की आवाज़ दूर तक जाती है।"

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोली-"क्या करूँ बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।"

मिस्टर शामनाथ ने इंतज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़बुन ख़त्म नहीं हुई। जो चीफ़ अचानक उधर आ निकला, तो? आठ-दस मेहमान होंगे, देसी अफ़सर उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलख़ाने की तरफ़ जा सकता है। क्षोभ ओर क्रोध में वह झुंझलाने लगे। एक कुर्सी को उठाकर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले- "आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।"

माँ माला सँभालतीं, पल्ला ठीक करती हुई उठीं, और धीरे-से कुर्सी पर आकर बैठ गईं।

"यूँ नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ाकर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है। माँ ने टाँगें नीचे उतार लीं।

"और ख़ुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहन कर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी वह खड़ाऊँ उठाकर बाहर फेंक दूँगा।"

माँ चुप रहीं।

"कपड़े कौन से पहनोगी, माँ?"

"जो हैं, वही पहनूँगी, बेटा! जो कहो, पहन लूँ।"

मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर देखने लगे, ओर माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ हर बात में तरतीब चाहते थे। घर का सब संचालन उनके अपने हाथ में था। खूँटियाँ कमरों में कहाँ लगाई जाएँ, बिस्तर कहाँ पर बिछें, किस रंग के परदे लगाए जाएँ, श्रीमती कौन-सी साड़ी पहनें, मेज़ किस साइज़ की हो......शामनाथ को चिंता थी कि अगर चीफ़ का साक्षात् माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित नहीं होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले- "तुम सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहन लो, माँ। पहन के आओ तो, ज़रा देखूँ।"

माँ धीरे-से उठीं और अपनी कोठरी में कपड़े पहनने चली गईं।

"यह माँ का झमेला ही रहेगा," उन्होंने फिर अंग्रेज़ी में अपनी स्त्री से कहा- "कोई

ढंग की बात हो, तो भी कोई कहे। अगर कहीं कोई उल्टी–सीधी बात हो गई, चीफ़ को बुरा लगा, तो सारा मज़ा जाता रहेगा।''

माँ सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहनकर बाहर निकलीं। छोटा–सा कद, सफ़ेद कपड़ों में लिपटा, छोटा–सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल पल्ले की ओट में छिप पाए थे। पहले से कुछ ही कम कुरूप नज़र आ रही थीं।

''चलो, ठीक है। कोई चूड़ियाँ–वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो। कोई हर्ज नहीं।''

''चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा? तुम तो जानते हो, सब ज़ेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए।''

यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा। तिनककर बोलें–''यह कौन–सा राग छेड़ दिया माँ! सीधा कह दो, नहीं हैं ज़ेवर बस! इससे पढ़ाई–वढ़ाई का क्या तअल्लुक है! जो ज़ेवर बिका, तो कुछ बनकर ही आया हूँ, निरा लंडूरा तो नहीं लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगुना ले लेना।''

''मेरी जीभ जल जाय, बेटा, तुम से ज़ेवर लूँगी? मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया। जो होते, तो लाख बार पहनती!''

साढ़े पाँच बज चुके थे। अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा–धोकर तैयार होना था। श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं। शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते गए– ''माँ, रोज़ की तरह गुम–सुम बनकर नहीं बैठी रहना। अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछें, तो ठीक तरह से बात का जवाब देना।''

''मैं न पढ़ी, न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी। तुम कह देना, माँ अनपढ़ है, कुछ जानती–समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।''

सात बजते–बजते माँ का दिल धक् धक् करने लगा। अगर चीफ़ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा तो वह क्या जवाब देंगी? अंग्रेज़ को तो दूर से ही देखकर वह घबरा उठती थीं, यह तो अमरीकी हैं। न मालूम क्या पूछे। मैं क्या कहूँगी। माँ का जी चाहा कि चुपचाप पिछवाड़े विधवा सहेली के घर चली जाएँ। मगर बेटे के हुक्म को कैसे टाल सकती थीं! चुपचाप कुर्सी पर टाँगें लटकाए वहीं बैठी रहीं।

एक कामयाब पार्टी वह है, जिसमें ड्रिंक कामयाबी से चल जाए। शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर चूमने लगी। वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे थे। कहीं कोई रुकावट न थी, कोई अड़चन न थी। साहब को व्हिस्की पसंद आई थी। मेम साहब को पर्दे पसंद आए थे, सोफ़ा-कवर का डिज़ाइन पसंद आया था, कमरे की सजावट पसंद आई थी। इससे बढ़कर क्या चाहिए! साहब तो ड्रिंक के दूसरे दौर में ही चुटकले और कहानियाँ कहने लग गए थे। दफ़्तर में जितना रोब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त-परवर हो रहे थे और उनकी स्त्री, काला गाउन पहने, गले में सफ़ेद मोतियों का हार, सेंट और पाउडर की महक से ओत-प्रोत, कमरे में बैठी सभी देसी स्त्रियों की आराधना का केंद्र बनी हुई थीं। बात-बात पर हँसतीं, बात-बात पर सिर हिलातीं और शामनाथ की स्त्री से तो ऐसे बातें कर रही थीं जैसे उनकी पुरानी सहेली हों।

और इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गए। वक्त गुज़रते पता ही न चला।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले। आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए, पीछे चीफ़ और दूसरे मेहमान।

बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ सहसा ठिठक गए। जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगे लड़खड़ा गईं और क्षण-भर में सारा नशा हिरन होने लगा। बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं, मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए और सिर दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ झूल रहा था और मुँह में से लगातार गहरे ख़र्राटों की आवाज़ें आ रही थीं। जब सिर कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर एक तरफ़ को थम जाता, तो ख़र्राटे और भी गहरे हो उठते। और फिर जब झटके से नींद टूटती, तो सिर फिर दाएँ से बाएँ झूलने लगता। पल्ला सिर पर से खिसक आया था, और माँ के झड़े हुए बाल, आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे। जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें और उन्हें कोठरी में धकेल दें, मगर ऐसा करना संभव न था, चीफ़ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।

माँ को देखते ही देसी अफ़सरों की कुछ स्त्रियाँ हँस दीं कि इतने में चीफ़ ने धीरे से कहा – पूअर डियर!

माँ हड़बड़ाकर उठ बैठीं। सामने खड़े इतने लोगों को देखकर ऐसी घबराईं कि कुछ कहते न बना। झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गईं और ज़मीन को देखने लगीं। उनके पाँव लड़खड़ाने लगे और हाथों की अंगुलियाँ थर-थर काँपने लगीं।

''माँ, तुम जाकर सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं?'' - और खिसियायी हुई नज़रों से शामनाथ चीफ़ के मुँह की ओर देखने लगे।

चीफ़ के चहरे पर मुस्कराहट थी। वह वहीं खड़े-खड़े बोले-'नमस्ते!'

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े मगर एक हाथ दुपट्टे के अंदर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर, ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पाईं। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।

इतने में चीफ़ ने अपना दायाँ हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे किया। माँ और भी घबरा उठीं।

''माँ, हाथ मिलाओ।''

पर हाथ कैसे मिलातीं? दाएँ हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के आएँ हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल - ही - दिल में जल उठे। देसी अफ़सरों की स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

''यूँ नहीं, माँ तुम तो जानती हो, दायाँ हाथ मिलाया जाता है। दायाँ हाथ मिलाओ।''

मगर तब तक चीफ़ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिलाकर कह रहे थे-''हाउ डू यू डू?''

'' कहो माँ, मैं ठीक हूँ, ख़ैरियत से हूँ,।''

माँ कुछ बड़बड़ाईं।

'' माँ कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हाउ डू यू डू।''

माँ धीरे से सकुचाते हुए बोलीं- ''हौ डू डू . . . .''

एक बार फिर कहकहा उठा।

वातावरण हल्का होने लगा साहब ने स्थिति सँभाल ली थी। लोग हँसने–चहकने लगे थे। शामनाथ के मन का क्षोभ भी कुछ–कुछ कम होने लगा था। साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे, और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।

शामनाथ अंग्रेज़ी में बोले – मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर – भर गाँव में रही हैं। इसलिए आपसे लजाती हैं।"

साहब इस पर ख़ुश नज़र आए। बोले – "सच? मुझे गाँव के लोग बहुत पसंद हैं। तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी?"– चीफ़ ख़ुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टकटकी बाँधे देखने लगे।

"माँ, साहब कहते हैं, कोई गाना सुनाओ। कोई पुराना गीत, तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।"

माँ धीरे से बोलीं– "मैं क्या गाऊँगी, बेटा। मैंने कब गाया है?"

" वाह, माँ! मेहमान का कहा भी कोई टालता है? साहब ने इतनी रीझ से कहा है, नहीं गाओगी तो साहब बुरा मानेंगे।"

" मैं क्या गाऊँ, बेटा मुझे क्या आता है?"

" वाह! कोई बढ़िया टप्पे सुना दो। दो पत्तर अनारां दे. . . ."

देसी अफ़सर और उनकी स्त्रियों ने इस सुझाव पर तालियाँ पीटीं। माँ कभी दीन दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखतीं, कभी पास बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गंभीर आदेश–भरे लहज़े में कहा–"माँ!"

इसके बाद हाँ या ना का सवाल ही न उठता था। माँ बैठ गईं और क्षीण, दुर्बल, लरजती आवाज़ में एक पुराना विवाह का गीत गाने लगीं–

हरिया नी माए
हरिया नी भैणे
हरिया ते भागी भरिया है!

देसी स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। तीन पंक्तियाँ गाकर माँ चुप हो गयीं।

बरामदा तालियों से गूँज उठा। साहब तालियाँ पीटना बंद ही न करते थे। शामनाथ की खीज प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी। माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था।

तालियाँ थमने पर साहब बोले – "पंजाब के गाँवों की दस्तकारी क्या है?"

शामनाथ ख़ुशी में झूम रहे थे। बोले–"ओ, बहुत कुछ, साहब! मैं आपको एक सेट उन चीज़ों का भेंट करूँगा। आप उन्हें देखकर ख़ुश होंगे।"

मगर साहब ने फिर सिर हिलाकर अंग्रेज़ी में फिर पूछा–"नहीं, मैं दुकानों की चीज़ नहीं माँगता। पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें ख़ुद क्या बनाती हैं?"

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले –" लड़कियाँ गुड़ियाँ बनाती हैं, औरतें फुलकारियाँ बनाती हैं।"

"फुलकारी क्या?"

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ से बोले–"क्यों माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है?"

माँ चुपचाप अंदर गईं और अपनी पुरानी फुलकारी उठा लाईं।

साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे। पुरानी फुलकारी थी, जगह–जगह से उसके तागे टूट रहे थे और कपड़ा फटने लगा था। साहब की रुचि देखकर शामनाथ बोले–"यह फटी हुई है, साहब, मैं आपको नई बनवा दूगाँ। माँ बना देंगी। क्यों माँ, साहब को फुलकारी बहुत पसंद है, इन्हें ऐसी ही एक फुलकारी बना दोगी न?"

माँ चुप रहीं। फिर डरते–डरते धीरे से बोलीं –"अब मेरी नज़र कहाँ है, बेटा! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी?"

मगर माँ का वाक्य बीच ही में तोड़ते हुए शामनाथ साहब से बोले–" वह ज़रूर बना देंगी। आप उसे देखकर खुश होंगे।"

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद किया और हल्के – हल्के झूमते हुऐ खाने की मेज़ की ओर बढ़ गए। बाकी मेहमान भी उनके पीछे–पीछे हो लिए।

जब मेहमान बैठ गए और माँ पर से सबकी आँखें हट गईं, तो माँ धीरे से कुर्सी पर से उठीं और सबसे नज़रें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं।

मगर कोठरी में बैठने की देरी थी कि आँखों से छल–छल आँसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार–बार उन्हें पोंछतीं, पर वे बार–बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बाँध तोड़कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार–बार आँखें बंद कीं मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।

आधी रात का वक्त होगा। मेहमान खाना खाकर एक–एक करके जा चुके थे। माँ दीवार से सटकर बैठीं आँखें फाड़े दीवार को देखे जा रही थीं। घर के वातावरण में तनाव ढीला पड़ चुका था। मुहल्ले की निस्तब्धता शामनाथ के घर पर भी छा चुकी थी, केवल रसोई में प्लेटों के खनकने की आवाज़ आ रही थी। तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा ज़ोर से खटकने लगा।

"माँ, दरवाज़ा खोलो।"

माँ का दिल बैठ गया। हड़बड़ाकर उठ बैठीं। क्या मुझसे फिर कोई भूल हो गई? माँ कितनी देर से अपने– आपको कोस रही थीं कि क्यों उन्हें नींद आ गई, क्यों वह ऊँघने लगीं। क्या बेटे ने अभी तक क्षमा नहीं किया? माँ उठीं और काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया।

दरवाज़ा खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आए और माँ को आलिंगन में भर लिया।

"ओ अम्मी! तुमने तो आज रंग ला दिया! .... साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी! अम्मी!"

माँ की छोटी – सी काया सिमट कर बेटे के आलिंगन में छिप गई। माँ की आखों में फिर आँसू आ गए। उन्हें पोंछती हुई धीरे से बोलीं–"बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ।"

शामनाथ का झूमना सहसा बंद हो गया और उनकी पेशानी पर फिर तनाव के बल पड़ने लगे। उनकी बाँहें माँ के शरीर पर से हट आईं।

"क्या कहा, माँ? यह कौन सा राग तुमने फिर छेड़ दिया?"

शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गए–"तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो, माँ? तुम जान – बूझकर हरिद्वार जा बैठना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता।"

"नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने अपना खा–पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े दिन जिंदगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"

"तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।"

"मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी–बनाई ले लो।"

"माँ, तुम मुझे धोखा देकर यूँ चली जाओगी? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब ख़ुश होगा तो मुझे तरक्की मिलेगी!"

माँ चुप हो गईं। फिर बेटे के मुँह की ओर देखती हुई बोलीं– "क्या तेरी तरक्की होगी? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा? क्या उसने कुछ कहा है?"

"कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना ख़ुश गया है। कहता था जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शुरू करेंगी तो मैं देखने आऊँगा कि कैसे बनाती हैं। जो साहब ख़ुश हो गया तो मुझे इससे बड़ी नौकरी भी मिल सकती है, मैं बड़ा अफ़सर बन सकता हूँ।"

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे–धीरे उनका झुर्रियों–भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में हल्की–हल्की चमक आने लगी।

"तो तेरी तरक्की होगी, बेटा?"

"तरक्की यूँ ही हो जाएगी? साहब को ख़ुश रखूँगा, तो कुछ करेगा, वरना उसकी ख़िदमत करने वाले और थोड़े हैं?"

"तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पड़ेगा, बना दूँगी।"

और माँ दिल–ही–दिल में फिर बेटे के लिए उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगीं और मिस्टर शामनाथ," अब सो जाओ, माँ!" कहते हुए, तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गए।

शब्दार्थ

फ़ुर्सत	–	ख़ाली समय
फ़ेहरिस्त	–	सूची
मुकम्मल	–	पूर्ण, पूरी
सुभीता	–	आराम से, निश्चिंतता
निबट लेना	–	पूरा कर लेना
अवाक्	–	आश्चर्य
क्षोभ	–	दुःख
तरतीब	–	क्रम
तअल्लुक	–	संबंध
हिदायत	–	आदेश–निर्देश
कामयाब	–	सफलता
रौ	–	धुन
दोस्त–परवर	–	दोस्ताना

रोब	–	शान
ठिठक गए	–	विचलित हो गए
टप्पे	–	विशेष अवसरों पर गाया जाने वाला गीत
निस्तब्धता	–	ख़ामोशी

प्रश्न :–

1. शामनाथ ने चीफ़ को दावत पर क्यों बुलाया और उसके लिए क्या–क्या तैयारियाँ कीं?
2. "माँ का क्या होगा"? इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. शामनाथ अपनी माँ को चीफ़ की नज़रों से क्यों दूर रखना चाहते थे– स्पष्ट कीजिए।
4. "पुत्रं के कुपुत्र होने पर भी माता कुमाता नहीं हो सकती",' चीफ़ की दावत' कहानी के आधार पर माँ के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
5. 'चीफ़ की दावत' कहानी आधुनिक संस्कृति का जीता–जागता उदाहरण है–समझाइए।

●

पाठ – 9

कलम आज उनकी जय बोल

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

कलम, आज उनकी जय बोल
जला अस्थियाँ बारी – बारी
छिटकाई जिनने चिनगारी
जो चढ़ गए पुण्य वेदी पर लिए बिना गरदन का मोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।
जो अगणित लघु दीप हमारे,
तूफ़ानों में एक किनारे ,
जल–जलकर बुझ गए किसी दिन माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।
पीकर जिनकी लाल शिखाएँ,
उगल रहीं लू – लपट दिशाएँ,
जिनके सिंहनाद से सहमी धरती रही अभी तक डोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।
अंधा चकाचौंध का मारा,
क्या जाने इतिहास बिचारा,
साखी हैं उनकी महिमा के सूर्य, चंद्र, भूगोल, खगोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।

शब्दार्थ

अस्थियाँ	–	हड्डियाँ
वेदी	–	Alter
लू	–	गर्म हवा
सहमना	–	डरना
साखी	–	साक्षी, गवाह (witness)
भूगोल	–	Geography
छिटकाना	–	बिखेरना
शिखा	–	लपट (Flame)
सिंहनाद	–	शेर की गर्जना
चकाचौंध	–	चमक (Dazzle)
महिमा	–	गौरव, महत्व
खगोल	–	Astronomy

प्रश्न :–

1. व्याख्या कीजिए–

    अंधा चकाचौंध का मारा, क्या जाने इतिहास बिचारा,
    साखी हैं उनकी महिमा के, सूर्य, चंद्र, भूगोल, खगोल।

2. इस कविता का केंद्रीय भाव लिखिए।

पाठ – 10

शतरंज के खिलाड़ी

– प्रेमचंद

वाज़िदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े ग़रीब-अमीर सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफ़ीम की पिनक ही में मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक अवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धंधों में, आचार-व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसाई सुरमें, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही हैं। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़कीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न ले कर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा, खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं (इस संप्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी ख़ाली नहीं है।) इसलिए अगर मिरज़ा सज्जादअली और मीर रोशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी ? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं; जीविका की कोई चिंता न थी; घर में बैठे चखोतियाँ करते थे। आख़िर और करते ही क्या ? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछा कर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाव-पेंच होने लगते। फिर ख़बर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम! घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता कि खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता-चलो, आते हैं,

दस्तरख़्वान बिछाओ। यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे में ही खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिरज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानख़ाने में बाज़ियाँ होती थीं। मगर यह बात न थी कि मिरज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से खुश हों। घरवालों का तो कहना ही क्या, मुहल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे-बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। ख़ुदा न करे, किसी को इसकी चाट पड़े, आदमी दीन-दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, न घर का, न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिरज़ा की बेग़म साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोज कर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती रहती थीं, तब तक बाज़ी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिरज़ा जी घर में आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं-क्या पान माँगे हैं ? कह दो, आकर ले जाएँ। खाने की फुरसत नहीं है ? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायँ चाहे कुत्ते को खिलाएँ। पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीर साहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था शायद मिरज़ा जी अपनी सफ़ाई देने के लिए सारा इलज़ाम मीर साहब ही के सर थोप देते थे।

एक दिन बेग़म साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा-जाकर मिरज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लाएँ। दौड़, जल्दी कर। लौंडी गई तो मिरज़ा जी ने कहा-चल, अभी आते हैं। बेग़म साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख़ हो गया। लौंडी से कहा-जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जाएँगी। मिरज़ा जी बड़ी दिलचस्प बाज़ी खेल रहे थे, दो ही किश्तों में मीर साहब की मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले-क्या ऐसा दम लबों पर है ? ज़रा सब्र नहीं होता ?

मीर- अरे, जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाज़ुक-मिज़ाज होती ही हैं।

मिरज़ा-जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ ! दो किश्तों में आपकी मात होती है।

मीर- जनाब इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें और मात हो जाए। पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख़ामख़्वाह उनका दिल दुखाइएगा ?

मिरज़ा- इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर– मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जा कर सुन आइए।

मिरज़ा– अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर–दर्द ख़ाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर– कुछ भी हो, उनकी ख़ातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिरज़ा– अच्छा एक चाल और चल लूँ।

मीर– हरगिज़ नहीं, जब तक आप सुन न आएँगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

मिरज़ा साहब मजबूर होकर अंदर गए तो बेग़म साहबा ने त्योरियाँ बदल कर, लेकिन कराहते हुए कहा–तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है। चाहे कोई मर ही जाए, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज, कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिरज़ा–क्या कहूँ मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ा कर आया हूँ।

बेग़म –क्या जैसे वे ख़ुद निखट्टू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं। उनके भी तो बाल–बच्चे हैं या सबका सफ़ाया कर डाला ?

मिरज़ा– बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना पड़ता है।

बेग़म –दुत्कार क्यों नहीं देते ?

मिरज़ा – बराबर के आदमी हैं; उम्र में, दर्ज़े में मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पड़ता है।

बेग़म – तो मैं ही दुत्कारे देती हूँ। नाराज़ हो जाएँगे, हो जाएँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। हरिया, जा बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे; आप तशरीफ़ ले जाइए।

मिरज़ा – हाँ–हाँ, कहीं ऐसा गज़ब भी न करना। ज़लील करना चाहती हो क्या ? ठहर हरिया, कहाँ जाती है।

बेग़म – जाने क्यों नहीं देते ? मेरा ही ख़ून पिए, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका मुझे रोको, तो जानूँ?

यह कहकर बेग़म साहबा झल्लाई हुई दीवानख़ाने की तरफ़ चलीं। मिरज़ा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिन्नतें करने लगे–ख़ुदा के लिए, तुम्हें हज़रत हुसेन की कसम है। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाए। लेकिन बेग़म ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गईं, पर एकाएक पर–पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध से गए। भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था। मीर साहब ने दो–एक मुहरे इधर–उधर कर दिए थे, और अपनी सफ़ाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेग़म ने अंदर पहुँच कर बाज़ी उलट दी, मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर और किवाड़ अंदर से बंद करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाज़े पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखा, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाज़ा बंद हुआ, तो समझ गए, बेग़म साहबा बिगड़ गईं। चुपके से घर की राह ली।

मिरज़ा ने कहा– तुमने गज़ब किया।

बेग़म – अब मीर साहब इधर आए, तो खड़े–खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ ख़ुदा से लगाते, तो वली हो जाते! आप तो शतरंज खेलें और मैं यहाँ चूल्हे–चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊँ। जाते हो हकीम के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है।

मिरज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे और सारा वृत्तांत कहा। मीर साहब बोले–मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इंतज़ाम करना उनका काम है; दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिरज़ा–ख़ैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?

मीर–इसका क्या ग़म है। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस यहीं जमे।

मिरज़ा–लेकिन बेग़म साहबा को कैसे मनाऊँगा? घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं; यहाँ बैठक होगी, तो शायद ज़िंदा न छोड़ेंगी।

मीर– अजी बकने भी दीजिए, दो–चार रोज़ में आप ही ठीक हो जाएँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से ज़रा तन जाइए।

(2)

मीर साहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से मीर साहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिए वह उनके शतरंज प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं; बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गंभीर है। लेकिन जब दीवानख़ाने में बिसात बिछने लगी और मीर साहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो बेग़म साहबा को बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाज़े पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में कोई आए, कोई जाए, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई। पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। बेगम साहबा से जा-जा कर कहते-हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई। दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी। घड़ी-आध घड़ी दिल बहलाव के लिए खेल खेलना बहुत है। ख़ैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं; हुजूर के ग़ुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लाएँगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई न कोई आफ़त ज़रूर आती है। यहाँ तक कि इसके पीछे मुहल्ले-के-मुहल्ले तबाह होते देखे गए हैं। सारे मुहल्ले में यही चरचा होती रहती है। हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने आका की बुराई सुन-सुन कर रंज होता है ? मगर क्या करें ? इस पर बेग़म साहबा कहतीं- मैं तो ख़ुद इसको पसंद नहीं करती। पर वह किसी की सुनते ही नहीं, क्या किया जाए।

मुहल्ले में जो दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, आपस में भाँति-भाँति की अमंगल कल्पनाएँ करने लगे-अब ख़ैरियत नहीं। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का ख़ुदा ही हाफ़िज़ है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फ़रियाद सुनने वाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची आती थी और वह वेश्याओं में, भाँड़ों में और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अंग्रेज़ कंपनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी वसूल न होता था। रेजीडेंट

बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर मीर साहब के दीवानख़ाने में शतरंज होते कई महीने गुज़र गए। नए-नए नक्शे हल किए जाते; नए-नए किले बनाए जाते; नित्य नई व्यूह-रचना होती, कभी-कभी खेलते-खलते झौड़ हो जाती; तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती; पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाज़ी उठा दी जाती, मिरज़ा जी रूठकर अपने घर चले आते। मीर साहब अपने घर में जा बैठते। पर रात भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फ़ौज का अफ़सर मीर साहब का नाम पूछता हुआ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गए। यह क्या बला सिर पर आई! यह तलबी किस लिए हुई है! अब ख़ैरियत नहीं नज़र आती। घर के दरवाज़े बंद कर लिए। नौकरों से बोले-कह दो, घर में नहीं हैं।

सवार – घर में नहीं, तो कहाँ हैं ?

नौकर – यह मैं नहीं जानता । क्या काम है ?

सवार – काम तुझे क्या बताऊँगा ? हुज़ूर में तलबी है। शायद फ़ौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गए हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी! मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा।

नौकर – अच्छा, तो जाइए, कह दिया जाएगा ?

सवार – कहने की बात नहीं है। मैं कल ख़ुद आऊँगा, साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी । मिरज़ा जी से बोले-कहिए जनाब, अब क्या होगा ?

मिरज़ा – बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी तलबी भी न हो।

मीर – कम्बख़्त कल फिर आने को कह गया है।

मिरज़ा – आफ़त है, और क्या। कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बेमौत मरे।

मीर – बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी। हज़रत आकर आप लौट जाएँगे।

मिरज़ा – वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवाए और कोई तदबीर ही नहीं है।

इधर मीर साहब की बेग़म उस सवार से कह रही थीं, तुमने खूब धता बताया।

उसने जवाब दिया – ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

(3)

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल में एक छोटी–सी दरी दबाए, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे , गोमती पार की एक पुरानी वीरान मसज़िद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफ्उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तंबाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मसज़िद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भर कर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन–दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। किश्त, शह आदि दो–एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दुकान पर जाकर खाना खाते, और एक चिलम हुक्का पी कर संग्राम क्षेत्र में डट जाते। कभी कभी तो उन्हें भोजन का भी ख़्याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कंपनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल–बच्चों को लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इनकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाजिम की निगाह न पड़ जाए, जो बेकार में पकड़ जाएँ। हज़ारों रुपए सालाना की जागीर मुफ़्त में हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसज़िद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मीर साहब की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मिरज़ा साहब उन्हें किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कंपनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। वह गोरों की फ़ौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीर साहब बोले– अंग्रेज़ी फ़ौज आ रही हैं; ख़ुदा ख़ैर करे।

मिरज़ा– आने दीजिए, किश्त बचाइए। यह किश्त।

मीर–ज़रा देखना चाहिए, यहीं आड़ में खड़े हो जाएँ।

मिरज़ा–देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त!

मीर–तोपख़ाना भी है। कोई पाँच हज़ार आदमी होंगे कैसे–कैसे जवान हैं। लाल बंदरों के से मुँह। सूरत देखकर ख़ौफ़ मालूम होता है।

मिरज़ा–जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा। यह किश्त!

मीर–आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आई हुई है और आपको किश्त की सूझी है! कुछ इसकी भी ख़बर है कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे ?

मिरज़ा – जब घर चलने का वक्त आएगा, तो देखा जाएगा–यह किश्त! बस, अब की शह में मात है।

फ़ौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाज़ी बिछ गई। मिरज़ा बोले– आज खाने की कैसे ठहरेगी?

मीर–शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा–पी कर आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गए। अब की मिरज़ा जी की बाज़ी कमज़ोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाज़िदअली पकड़ लिए गए थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार–काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह ख़ून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े–बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बंदी चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिरज़ा ने कहा–हुजूर नवाब साहब को ज़ालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर– होगा, यह लीजिए शह।

मिरज़ा – जनाब ज़रा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त ख़ून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर–रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा। यह किश्त!

मिरज़ा – किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर–हाँ; सो तो है ही–यह लो, फिर किश्त! बस, अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिरज़ा– ख़ुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाज़िदअली शाह!

मीर–पहले अपने बादशाह को तो बचाइए फिर नवाब साहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और यह मात! लाना हाथ!

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिरज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा–आइए, नवाब साहब के मातम में एक मरसिया कह डालें। लेकिन मिरज़ा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

(4)

शाम हो गई। खंडहर में चमगादड़ों ने चीख़ना शुरू किया। अबाबीलें आ–आ कर अपने–अपने घोसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो ख़ून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिरज़ा जी तीन बाज़ियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाज़ी का रंग भी अच्छा न था। वह बार–बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभल कर खेलते थे लेकिन एक–न–एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के गज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मिरज़ा जी सुन–सुन कर झुँझलाते और

हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे-जनाब, आप चाल बदला न कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो एक बार चल दीजिए; यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रखते हैं ? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज़्यादा लगे, उसकी मात समझी जाए। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर साहब का फ़रज़ी पिटता था। बोले-मैंने चाल चली ही कब थी ?

मिरज़ा – आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए-उसी घर में!

मीर-उस घर में क्यों रखूँ ? मैंने हाथ से मुहरा छोड़ा ही कब था ?

मिरज़ा – मुहरा आप कयामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी ? फ़रज़ी पिटते देखा तो धाँधली करने लगे।

मीर-धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तकदीर से होती है, धाँधली से कोई नहीं जीतता?

मिरज़ा- तो इस बाज़ी में तो आपकी मात हो गई।

मीर-मुझे क्यों मात होने लगी ?

मिरज़ा – तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर-वहाँ क्यों रखूँ ? नहीं रखता।

मिरज़ा- क्यों न रखिएगा ? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरज़ा बोले-किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला करते थे, आप शतरंज क्या खेलिएगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर–क्या ? घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं।

मिरज़ा– अजी, जाइए भी, ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के यहाँ बावरची का काम करते–करते उम्र गुज़र गई आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।

मीर–क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख़ लगाते हो– वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़ान पर खाना खाते चले आए हैं।

मिरज़ा– अरे चल चरकटे, बहुत बढ़–बढ़ कर बातें न कर।

मीर–ज़बान संभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला ?

मिरज़ा– आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर, आइए। आज दो–दो हाथ हो जाए, इधर या उधर।

मीर–तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन ?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी ज़माना था; सभी तलवार, पेशकब्ज़, कटार वगैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था–बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें; पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ज़ख़्म खा कर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प–तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

अँधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने–अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि–धूसरित मीनारें इन लाशों को देखतीं और सिर धुनती थीं।

शब्दार्थ

मजलिस	–	महफ़िल, सभा
पिनक	–	नशा
कलाबत्तू	–	कशीदाकारी (Embroidery)
सुरमा	–	आँखों में लगाने का एक पदार्थ (Collyrium)
उवटन	–	नहाने से पहले शरीर पर लगाने का पदार्थ
पाली बदना	–	शर्त लगाना, (To Bet)
पेचीदा	–	जटिल
दलील	–	तर्क
जागीर	–	शासन द्वारा दी गई संपत्ति
दस्तरख़्वान	–	भोजन के लिए बिछाया जाने वाला कपड़ा
फ़कीर	–	भिखारी
कारीगर	–	शिल्पकार
इत्र	–	सुगंध, Perfume
मिस्सी	–	दाँत रंगने का पदार्थ
रोज़गार	–	व्यवसाय
चौसर	–	पासों (Dice) से खेला जाने वाला खेल
मदक	–	एक प्रकार का नशीला पदार्थ
गंजीफ़ा	–	ताश
मौरूसी	–	पैतृक, पूर्वजों की
मनहूस	–	अशुभ
तबाह	–	नष्ट
दीन	–	धर्म
लताड़ना	–	डाँटना
दीवानख़ाना	–	बैठक (Drawing Room)
रूबरू	–	सामने

इलज़ाम	–	दोष
मिज़ाज	–	स्वभाव
सुर्ख़	–	लाल
मात	–	हार (Check Mate)
जनाब	–	श्रीमान
ख़ाक नहीं	–	बिल्कुल नहीं
त्योरियाँ बदलना	–	क्रोध की मुद्रा में आना
निगोड़ी	–	बेकार (Worthless)
लती	–	बुरी आदत वाला
दर्ज़ा	–	पद (Position)
ज़लील करना	–	नीचा दिखाना, अपमान करना
ताम्मुल	–	समस्या, आपत्ति
वली	–	महात्मा
हुक्म बजाना	–	आज्ञा पालन करना
तबाह	–	बरबाद
द्वेषपूर्ण	–	क्रोधपूर्ण, आक्रोश भरी
मलाल	–	दुख
लौंडी	–	नौकरानी
ताब	–	धैर्य
लब	–	होंठ
नाज़ुकमिज़ाज	–	कोमल स्वभाव
ख़ामख्वाह	–	व्यर्थ में, बिना कारण
बहाना	–	Excuse
नौज	–	हे भगवान!
निखट्टू	–	आलसी (Idle)
जंजाल	–	मुसीबत, समस्या
मुलाहिजा	–	सम्मान
लौ लगना	–	भक्ति करना
मैयत	–	मृत शरीर
ताड़ना	–	अनुमान लगाना
मुनासिब	–	उचित

पनपना – उन्नति करना
आका – मालिक, स्वामी
रंज – दुख
हाफ़िज़ – रक्षक
आसार – लक्षण
फ़रियाद – शिकायत
तदबीर – उपाय, रास्ता
गोता खाना – लीन हो जाना, डुबकी लगाना
तलबी – बुलावा, (Summon)
हज़रत – श्रीमान
वल्लाह – हे भगवान
गावदी – बेवकूफ़, मूर्ख
समाधि – चिंतन (Meditation)
हज़म करना – पचाना (To Digest)
ऐश – विलासिता, (Luxury)
दर्दनाक – दुखपूर्ण
हादसा – घटना
मर्सिया – दुख का गीत
बेढब – मुश्किल, जटिल
दाद देना – प्रशंसा करना
खैरियत – कुशल
बादशाहत – राज्य, शासन
हाहाकार मचाना – दुख व असंतोष होना
झौंड़ – झगड़ा
मनोमालिन्य – मन का मैल, मन का आक्रोश
बला – मुसीबत
दिल्लगी – मज़ाक
चकमा देना – धोखा देना
धता बताना – मूर्ख बनाना
मुँह अँधेरे – बहुत सवेरे
मुलाजिम – कर्मचारी
खंडहर – टूटी–फूटी इमारतें

ज़ालिम	–	क्रूर, (Cruel).
सनद	–	नियम, प्रमाण
मातम	–	दुख
सूरमा	–	सैनिक
चुटकियाँ लेना	–	मज़ाक करना
फ़रज़ी	–	मंत्री
क़यामत	–	प्र लय
तकरार	–	झगड़ा
क़ायदे	–	नियम
रियासत	–	राज्य
बुजुर्ग़	–	पूर्वज, बड़े–बूढे
हौसला	–	साहस
कटार	–	छोटी तलवार
सिंहासन	–	राजा का आसन (Throne)
धूल–धूसरित	–	धूल में लिपटी
धाँधली	–	बेईमानी
टेक	–	निश्चय, जिद
सिर धुनना	–	दुख मनाना
पीढ़ी	–	Generation
कालिख़	–	काला रंग
पेशकब्ज़	–	बड़ा चाकू, छुरा
ज़ख्म़	–	चोट
मेहराब	–	Arch
मीनार	–	Tower

प्रश्न :–

1. शतरंज के खिलाड़ी कहानी के आधार पर तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक स्थितियों का वर्णन कीजिए।
2. व्याख्या कीजिए–
   (क) आज तक किसी.................................. चरम सीमा थी।
   (ख) दोनों विलासी थे.................................. प्राण दे दिए।
3. प्रेमचंद जी की कहानी कला के संबंध में विचार व्यक्त कीजिए।

पाठ – 11

उर्मिला

– मैथिली शरण गुप्त

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा दीपक भी जलता है।
सीस हिलाकर दीपक कहता–
बंधु, वृथा ही तू क्यों दहता ?
पर पतंग पड़ कर ही रहता!
कितनी विह्वलता है!
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बचकर हाय पतंग मरे क्या ?
प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ?
क्या यह असफलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
कहता है पतंग मन मारे –
तुम महान मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे ?
शरण किसे छलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली।
किंतु पतंग–भाग्य–लिपि काली,
किसका वश चलता है ?

दोनों ओर प्रेम पलता है।
जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती ?
काम नहीं, परिणाम निरखती,
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

(साकेत से)

शब्दार्थ

पतंग	–	पतंगा, Moth
वृथा	–	व्यर्थ में
दहता	–	जलता
शरण	–	आश्रय, सहारा
आली	–	सखि
वश	–	बस, नियंत्रण
वणिग्वृत्ति	–	बनिए जैसा स्वभाव
निरखना	–	देखना
विह्वलता	–	बेचैनी, व्याकुलता
मन मारना	–	स्वयं को समझाना
प्रणय	–	प्यार
छलना	–	धोखा देना
भाग्य–लिपि	–	भाग्य में लिखा हुआ
जगती	–	संसार
चखना	–	खाना, To Taste
खलना	–	बुरा लगना

प्रश्न :–

1. इस कविता का सारांश लिखिए।
2. गुप्त जी की काव्य कला के संबंध में बताइए।

पाठ 12

राजेंद्र बाबू

– महादेवी वर्मा

राजेंद्र बाबू को मैंने पहले–पहले तब देखा, जब मैं प्रयाग में बी. ए. की विद्यार्थी थी और शीतावकाश में अपने घर भागलपुर जा रही थी। पटना में भाई से मिलने की बात थी, अतः स्टेशन पर ही प्रतीक्षा के कुछ घंटे व्यतीत करने पड़े।

स्टेशन के एक ओर तीन पैर वाली बेंच पर देहातियों की वेशभूषा में कुछ नागरिकों से घिरे जो सज्जन बैठे थे, उनकी ओर मेरी दृष्टि जाकर लौट आई।

पहली दृष्टि में ही जो आकृति स्मृति में अंकित हो गई थी, उसमें इतने वर्षों में न कोई रेखा जुड़ी है और न कोई रंग भरा है।

काले, घने पर छोटे कटे हुए बाल, चौड़ा मुख, चौड़ा माथा, घनी भौंहों के नीचे बड़ी–बड़ी आँखें, मोटी नाक, कुछ गोलाई लिए चौड़ी ठुड्डी, कुछ मोटे पर सुडौल होंठ, साँवला–सा गेहुँआ वर्ण, ग्रामीणों जैसी बड़ी–बड़ी मूँछें।

उनकी वेशभूषा की ग्रामीणता तो दृष्टि को और भी उल्टा देती थी। खादी की मोटी धोती एक ओर दाहिने पैर के घुटने को छूती थी और दूसरी ओर बाएँ पैर की पिंडली को। मोटे, खुरदुरे काले बंद गले के कोट में ऊपर का भाग बटन टूट जाने के कारण खुला था और घुटने के नीचे का बटनों से बंद था। सर्दी के दिनों के कारण पैर में मोज़े –जूते तो थे, परंतु एक मोज़ा, जूते पर उतर आया था। दूसरा टखने पर घेरा बना रहा था। मिट्टी की पर्त से न जूतों के रंग का पता चलता था, न रूप का। गांधी टोपी की स्थिति तो और भी विचित्र थी। उसकी आगे की नोक बाईं भौंह पर खिसक आई थी और टोपी की कोर माथे पर पट्टी की तरह लिपटी हुई

थी। देखकर लगता था मानो वे किसी हड़बड़ी में चलते-चलते कपड़े पहनते आए हैं, अतः जो जहाँ जिस स्थिति में अटक गया, वह वहीं उसी स्थिति में अटका रह गया है।

उनकी मुखाकृति देखकर अनुभव होता था, मानो उन्हें कहीं देखा है। अनेक व्यक्तियों ने उन्हें प्रथम बार देखकर ऐसा ही अनुभव किया होगा।

राजेंद्र बाबू की मुखाकृति ही नहीं, उनके शरीर के संपूर्ण गठन में एक सामान्य भारतीय जन की आकृति और गठन की छाया थी, अतः देखने वाले को कोई-न-कोई आकृति या व्यक्ति स्मरण हो आता था और वह अनुभव करने लगता था कि इस प्रकार के व्यक्ति को पहले भी कहीं देखा है। आकृति और वेशभूषा के समान ही वे अपने स्वभाव और रहन-सहन में सामान्य भारतीय कृषक के प्रतिनिधि लगते थे।

किसी ने उनके पैरों में दो भिन्न रंगों के मोज़े देख लिए तो राजेंद्र बाबू का संकुचित हो उठना सहज था, परंतु दूसरे दिन जब वे स्वयं सावधानी से रंगों का मिलान करके मोज़े पहनते, तो पहले से भी अधिक अनमेल रंगों के हो जाते थे।

उनकी वेशभूषा की अस्तव्यस्तता के साथ उनके निजी सचिव और सहचर भाई चक्रधर जी का स्मरण अनायास हो आता है। जब मोज़ों में से पाँचों उँगलियाँ बाहर निकलने लगतीं, जब जूतों के तलों से पैर के तलवे दिखाई देने लगते, जब धोती, कुरते, कोट आदि का खद्दर अपने मूल ताने-बाने में बदलने लगता, तब चक्रधर इस पुरातन सज्जा को अपने लिए सहेज लेते हैं। वे वर्षों तक इसी प्रकार राजेंद्र बाबू के पुराने परिधान से अपने आपको सुसज्जित कर कृतार्थ मानते रहे। मैंने ऐसे गुरुशिष्य या स्वामी सेवक फिर अब तक नहीं देखे।

राजेंद्र बाबू के निकट संपर्क में आने का अवसर मुझे सन् 1937 में मिला। वे कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में महिला विद्यापीठ महाविद्यालय भवन का शिलान्यास करने प्रयाग आए। उनसे ज्ञात हुआ कि उनकी 15-16 पौत्रियाँ हैं, जिनकी पढ़ाई की व्यवस्था नहीं हो पाई है। मैं यदि अपने छात्रावास में रखकर उन्हें विद्यापीठ की परीक्षाओं में बैठा सकूँ, तो उन्हें शीघ्र कुछ विद्या प्राप्त हो सकेगी।

पहले बड़ी, फिर छोटी, फिर उनसे छोटी के क्रम से बालिकाएँ मेरे संरक्षण में आ गईं और उन्हें देखने प्रायः उनकी दादी और कभी-कभी दादा भी प्रयाग आते रहे। तभी मुझे राजेंद्र बाबू की सहधर्मिणी के निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। वे सच्चे अर्थ में 'धरती की पुत्री' थीं-सरल, क्षमामयी, सबके प्रति ममतामयी। ससुराल में जब वे आईं तब वे केवल बालिका

थीं। संभ्रांत जमींदार परिवार की परंपरा के अनुसार उन्हें घंटों सिर नीचा करके एकासन बैठना पड़ता था। परिणामतः उनकी रीढ़ की हड्डी इस प्रकार झुक गई कि युवती होकर भी वे सीधी खड़ी नहीं हो पाईं।

राजेंद्र बाबू ने मुझे बताया कि बालिकाओं की दादी किसी का छुआ नहीं खातीं। केवल ब्राह्मण रसोइए के हाथ का बना खाना खा लेती हैं। छात्रावास का रसोइया महाराज उनकी थाली परोस देगा। इसे बुरा मत समझना कहकर वे संकुचित-से हो गए।

श्रीमती राजवंशी देवी बिहार के जमींदार परिवार की वधू थीं। उनके पति राजेंद्र बाबू स्वतंत्रता-संग्राम के महान सेनानी थे, परंतु उन्हें कभी अहंकार नहीं हुआ। छात्रावास की सभी बालिकाओं तथा नौकरों का उन्हें समान रूप से ध्यान रहता था। एक दिन या कुछ घंटों के बाद ही वे सबको बुलातीं, उनसे उनके परिवार का कुशल-मंगल पूछतीं। घर से अपनी पौत्रियों के लिए जो मिष्ठान लाती थीं उसे सभी छात्राओं और नौकरों में बाँट देती थीं।

गंगा स्नान के लिए तो मुझे उनके साथ प्रायः जाना पड़ता था। उन दिन संगम पर जितना दूध मिलता, जितने फूल दिखाई देते सब उनकी ओर से ही गंगा-यमुना की भेंट हो जाते।

पौत्रियों के संबंध में राजेंद्र बाबू का स्पष्ट निर्देश था कि वे अन्य बालिकाओं के साथ बहुत सादगी और संयम से रहें। वे खादी के कपड़े पहनती थीं, जिन्हें वे स्वयं ही धोती थीं। कमरे की सफ़ाई, झाड़ू-पोंछा, गुरुजनों की सेवा आदि भी उनकी दिनचर्या के आवश्यक अंग थे।

उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलनकारियों को प्रायः जेल जाना पड़ता था, अतः किसी की पत्नी, किसी की बहन, किसी की बेटी विद्यापीठ के छात्रावास से अनुपस्थित रहती थी। सन् 1947 ई. के बाद उनमें से कुछ दिल्ली चली गईं और कुछ विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए अंग्रेज़ी के विद्यालयों में भर्ती हो गईं। जब राजेंद्र बाबू भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने तब मुझे स्वयं उनकी पौत्रियों के संबंध में चिंता हुई। राजेंद्र बाबू का स्पष्ट उत्तर मिला- महादेवी बहन, दिल्ली मेरी नहीं है, राष्ट्रपति भवन मेरा नहीं है। अहंकार से मेरी पौत्रियों का दिमाग़ ख़राब न हो जाए, तुम केवल इसकी चिंता करो। वे जैसे रहती आई हैं, उसी प्रकार रहेंगी।

उनकी सहधर्मिणी में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जब राष्ट्रपति भवन में उनके कमरे से संलग्न रसोईघर बन गया, तब वे दिल्ली गईं। वे स्वयं भोजन बनाती थीं।

सामान्य भारतीय गृहिणी के समान पहले पति, परिवार तथा परिजनों को खिलाती थीं। इसके बाद ही वे स्वयं भोजन करती थीं।

उस विशाल भवन में यदि अपने अद्‌भुत आतिथ्य की बात न कहूँ तो कथा अधूरी रह जाएगी। बालिकाओं की दादी ने मुझे दिल्ली आने का विशेष निमंत्रण तो दिया ही, साथ ही, प्रयाग से सिरकी के बने एक दर्ज़न सूप लाने का आदेश दिया। उन्होंने बार-बार आग्रह किया कि मैं उनके लिए इतना कष्ट अवश्य उठाऊँ, क्योंकि फटकने-पछोरने के लिए सिरकी के सूप बहुत अच्छे होते हैं, पर कोई उन्हें लाने वाला ही नहीं मिलता।

प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बारह सूपों के टाँगने पर जो दृश्य उपस्थित हुआ उससे भी अधिक विचित्र दृश्य तब प्रत्यक्ष हुआ, जब राष्ट्रपति भवन से आई बड़ी कार पर यह उपहार लादा गया। राष्ट्रपति भवन के हर द्‌वार पर सलाम ठोंकने वाले सिपाहियों की आँखें विस्मय से खुली रह गईं। ऐसी भेंट लेकर कोई अतिथि न कभी वहाँ पहुँचा था न पहुँचेगा, पर भवन की तत्कालीन स्वामिनी ने मुझे सीने से लगा लिया।

राजेंद्र बाबू तथा उनकी सहधर्मिणी सप्ताह में एक दिन अन्न नहीं ग्रहण करते थे। संयोग से मैं उनके उपवास के दिन ही पहुँची, अतः उनकी यह जिज्ञासा स्वाभाविक थी कि मैं कैसा भोजन पसंद करूँगी। उपवास में भी आतिथेय का साथ देना उचित समझकर मैंने बिना अन्न वाले भोजन की इच्छा प्रकट की। फलाहार के साथ उत्तम खाद्‌य-पदार्थों की कल्पना स्वाभाविक रहती है। सामान्यतः हमारा उपवास अन्य दिनों के भोजन की अपेक्षा अधिक ख़र्चीला हो जाता है, क्योंकि उस दिन हम भाँति-भाँति के फल, मेवे आदि एकत्र कर लेते हैं।

मुझे आज भी वह संध्या नहीं भूलती, जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति को मैंने सामान्य आसन पर बैठकर दिनभर के उपवास के उपरांत केवल कुछ उबले आलू खाकर उपवास तोड़ते देखा। मुझे भी वही खाते देखकर उनकी दृष्टि में संतोष और होंठों से बालकों-जैसी सरल हँसी छलक उठी।

जीवन मूल्यों की परख करने वाली दृष्टि के कारण उन्हें देशरत्न की उपाधि मिली और मन की सरल स्वच्छता ने उन्हें अजातशत्रु बना दिया। अनेक बार प्रश्न उठता है, क्या वह साँचा टूट गया जिसमें ऐसे कठिन, कोमल चरित्र ढलते हैं।

शब्दार्थ

शीतावकाश	–	सर्दी की छुट्टियाँ
खुरदुरा	–	Rough, Coarse
पर्त	–	सतह
ताना–बाना	–	Warf and Woof
परिधान	–	वस्त्र
संभ्रांत	–	प्रतिष्ठित
संयम	–	धैर्य, Continence
परख	–	जाँच, परीक्षा
सिरकी	–	Straw
सेनानी	–	सिपाही
ख़र्चीला	–	महँगा
आतिथेय	–	Host
अजात शत्रु	–	जिसका कोई भी दुश्मन न हो
देहाती	–	ग्रामीण
गठन	–	रचना
तलवा	–	Sole of the foot
सहेजना	–	सँभाल कर रखना
कृतार्थ	–	आभारी, कृतज्ञ
साँचा	–	Die, Mould
आंदोलन	–	क्रांति (Agitation)
आतिथ्य	–	मेहमान का स्वागत (Hospitality)
फटकारना	–	अनाज साफ़ करना
पछोरना	–	To Winnow
अन्न	–	अनाज

प्रश्न :–

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर राजेन्द्र बाबू के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
2. राजेन्द्र प्रसाद जी की वेशभूषा कैसी थी?
3. 'उनकी वेशभूषा की ग्रामीणता तो दृष्टि को और भी उल्टा लेती थी' स्पष्ट कीजिए।
4. 'क्या वह साँचा टूट गया है जिसमें ऐसे कठिन, कोमल चरित्र ढलते हैं'? इस कथन से क्या अभिप्राय है?
5. महादेवी वर्मा और उनकी गद्‌य लेखन शैली पर एक छोटा सा निबंध लिखिए।

•

पाठ – 13
प्रेम का रोग

– कुँवर नारायण

एक अजीब सी मुश्किल में हूँ इन दिनों–
मेरी भरपूर नफ़रत कर सकने की ताकत
दिनों दिन क्षीण पड़ती जा रही है।
अंग्रेज़ों से नफ़रत करना चाहता
(जिन्होंने दो सदी हम पर राज किया)
तो शेक्सपीयर आड़े आ जाते
जिनके मुझ पर न जाने कितने एहसान हैं।
मुसलमानों से नफ़रत करने चलता
तो सामने ग़ालिब आकर खड़े हो जाते।
अब आप ही बताइए–किसकी कुछ चलती है
उनके सामने ?
सिखों से नफ़रत करना चाहता
तो गुरुनानक सामने छा जाते

और सिर अपने आप झुक जाता।

और ये कंबन, त्यागराजा, मुत्तू स्वामी.........

लाख समझाता अपने को

कि ये मेरे नहीं

दूर कहीं दक्षिण के हैं

पर मन है कि मानता ही नहीं

बिना इन्हें अपनाए;

और वह प्रेमिका

जिससे मुझे पहला धोखा हुआ था

मिल जाए तो उसका ख़ून कर दूँ।

मिलती भी है, मगर

कभी मित्र

कभी माँ

कभी बहन की तरह

तो प्यार का घूँट पीकर रह जाता।

हर समय

पागलों की तरह भटकता रहता

कि कहीं कोई ऐसा मिल जाए

जिससे भरपूर नफ़रत करके

अपना जी हलका कर लूँ!

पर होता इसका ठीक उल्टा

कोई–न–कोई, कहीं–न–कहीं, कभी–न–कभी

ऐसा मिल जाता

जिससे प्यार किए बिना रह ही नहीं पाता!

दिनों दिन मेरा यह प्रेम–रोग बढ़ता ही जा रहा

और इस वहम ने पक्की जड़ पकड़ ली है

कि यह प्रेम किसी दिन मुझे

स्वर्ग दिखाकर ही रहेगा।

शब्दार्थ

भरपूर	–	शक्ति या सामर्थ्य के अनुसार
एहसान	–	उपकार
वहम	–	भ्रम
जड़ पकड़ना	–	मज़बूत होना
आड़े आना	–	रुकावट डालना
घूँट	–	Sip
घूँट पीकर रह जाना	–	विवश होना

प्रश्न :–

1. कवि शेक्सपीयर और ग़ालिब के कारण नफ़रत क्यों नहीं कर पाता?
2. इस कविता का केंद्रीय भाव क्या है?

पाठ – 14

कलाकार

– राजेंद्र यादव

बहुरूपियों के बारे में हम सब जानते हैं। इन लोगों का पेशा अब समाप्त होता जा रहा है, लेकिन किसी समय रईसों और अमीरों का मनोरंजन करने वाले बहुरूपिए प्रायः हर नगर में पाए जाते थे। ये कभी धोबी का रूप लेकर आते थे, कभी डाकिए का। हू–ब–हू उसी तरह का व्यवहार करके ये प्रायः लोगों को भ्रम में डाल देते थे। और यही इनकी सफलता थी कि धोखा खा जाने वाला रईस इन्हें इनाम देता था। इसी तरह के बहुरूपिए का एक किस्सा मैंने राजस्थानी लोक–कथाओं में सुना था और मुझे वह अभी भी अच्छी तरह याद है। मुझे लगता है कि हम सबके भीतर कहीं न कहीं उसी तरह का बहुरूपिया बैठा है।

एक बार एक बहुरूपिए ने साधु का रूप बनाया। सिर पर जटाएँ, नंगे शरीर पर भभूत, माथे पर त्रिपुंड, कमर में लँगोटी। उसके रूप में कहीं कोई कसर नहीं थी और वह एकदम संसार–त्यागी साधु ही लगता था। उसने नगर से बाहर बड़े से पेड़ के नीचे अपनी कुटी तैयार की, बगीचा लगाया और बैठकर तपस्या करने लगा। धीरे–धीरे सारे नगर में समाचार फैलने लगा कि बाहर एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा ने आकर डेरा लगाया है। लोग उसके दर्शनों को आने लगे और धीरे–धीरे चारों तरफ साधु का यश फैल गया। सारे दिन उसके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। लोग कहते हैं कि महात्मा जी के उपदेशों में जादू है और उनके आशीर्वाद से संसार के बड़े–बड़े कष्ट दूर हो जाते हैं। अपनी इस कीर्ति से साधु को कभी–कभी बड़ा आश्चर्य होता और मन–ही–मन वह अपनी सफलता पर मुस्कराया करता।

नगर के सबसे बड़े सेठ से जब किसी ने साधु का ज़िक्र किया तो अविश्वास से हँस पड़ा। बोला, 'ऐसे ढोंगी जाने यहाँ कितने आते रहते हैं' और वह अपने कारोबार में लग गया। लेकिन साधु का नाम चारों ओर फैलता जा रहा था। साधु भी कभी–कभी सोचता कि अब फिर

बहुरूपिया जीवन में लौटने में क्या रखा है, क्यों न इसी जीवन में अपनी ज़िंदगी लगा दी जाए। लेकिन फिर उसका मन धिक्कारने लगता कि वह ज़िंदगी–भर साधु बना रहा तो अपने असली पेशे के साथ बेईमानी करेगा। इसी सोच–विचार में उसके दिन निकलने लगे।

एक बार सेठ की पत्नी बहुत बीमार हो गई, दुनियाभर के इलाज़ कराए, सभी वैद्य–डॉक्टर बुलाए, लेकिन सेठानी की तबियत ही ठीक नहीं हुई। उसे लगता था कि वह अब नहीं बचेगी। मित्रों और शुभचिंतकों ने सलाह दी कि एक बार उस साधु को दिखा देने में क्या हानि है। हारकर सेठ तैयार हो गया। साधु ने जब दूर से सेठ को आते देखा तो बहुत ही प्रसन्न हुआ। नगर का सबसे बड़ा करोड़पति उसके यहाँ आ रहा था। आगे–आगे सेठ फिर डोली में बीमार सेठानी। उसने जाकर साधु के चरण पकड़ लिए– "महाराज, जैसे भी हो, सेठानी को जीवन–दान दीजिए। यह मेरे घर की लक्ष्मी है। इसी के कारण यह करोड़ों की संपत्ति आई है। जिस दिन से इसने मेरे यहाँ पाँव रखा है, मैंने जिस काम में हाथ लगाया, उसमें लाभ ही हुआ है। अगर इसे कुछ हो गया तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा।"

साधु ने गंभीर चेहरा बनाकर डोली का परदा उठाया। सेठानी बीमारी में बेहोश पड़ी थी। "भगवान ने चाहा तो सेठानी सात दिन में ठीक हो जाएगी।" उसने कहा और धूनी की चुटकी–भर राख़ उसके ऊपर डाल दी। वहाँ रोज़ आने को कहकर वह अपनी आँखें मूँदकर समाधि में लग गया।

सेठानी रोज़ आने लगी। और संयोग की बात कि धीरे–धीरे उसकी तबीयत भी सुधरने लगी। सात–आठ दिनों में लगने लगा कि उसकी बीमारी अब समाप्त होने लगी है। सेठ का साधु पर घनघोर विश्वास हो गया और वह रोज़ उसके पास आने लगा। सेठानी ठीक हो गई, लेकिन सेठ रोज़ आता रहा।

साधु उसे रोज़ उपदेश दिया करता–"यह संसार माया है! धन का लोभ आदमी को आदमी नहीं रहने देता, जितना धन बढ़ता है, लोभ उसके साथ बढ़ता जाता है। सच्चा सुख धन का त्याग करने में है, इस माया मोह से उठकर भगवान के चरणों में ध्यान लगाने में है। सोना तो मिट्टी है और मिट्टी का मोह पालकर आज तक किसी ने शांति नहीं पाई।" धीरे–धीरे साधु के उपदेशों का प्रभाव सेठ पर पड़ने लगा।

एक दिन साधु ने देखा कि घोड़ों–ऊँटों और बैलगाड़ियों का झुंड उसकी कुटी की तरफ़ चला आ रहा है। मन में संदेह हुआ कि कहीं लोगों को उसकी असलियत तो पता नहीं चल गई

और ये सरकार के आदमी उसे पकड़ने चले आ रहे हैं। वह यह सब सोच ही रहा था कि देखा–उस झुंड के आगे–आगे वही सेठ है। सेठ पास आया। उसने साधु को प्रणाम किया–गाड़ियों–घोड़ों, ऊँटों से सोने–चाँदी के गहनों, मुहरों और हीरे–जवाहरातों से भरे कलसे उतारे गए। देखते–देखते कुटी के सामने ढेर लग गया। सेठ ने साधु के चरण पकड़कर कहा, "महाराज, आपके उपदेशों से मुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया है और इस संसार से मेरा मन फिर गया है। झूठ–कपट से मैंने जो धन कमाया है वह सब मैं आपके चरणों में रख रहा हूँ। इसका जो भी आप चाहें, करें–ग़रीबों में बाँट दें या मंदिर बनवा दें। मुझे अपना शिष्य बना लें।"

गंभीर होकर साधु ने उत्तर दिया–"जिस धन को मैं तुझे त्यागने का उपदेश देता रहा हूँ, तू उसकी माया में मुझे क्यों फँसाता है ? जो तेरे लिए मिट्टी है, वह मेरे लिए मिट्टी तो और भी पहले है। मैं इसमें हाथ नहीं लगा सकता।" और सचमुच उसने धन नहीं लिया। समझा–बुझाकर सेठ को लौटा दिया। महात्मा की इस महानता से सेठ की आँखों में आँसू आ गए।

अगले दिन जब सेठ आया तो उसने देखा कि साधु का कहीं पता नहीं है। इधर–उधर खोजा, कहीं भी कोई नहीं था। इतने में ही किसी ने आकर उसके चरण पकड़ लिए–"सेठ, मेरा ईनाम दें।"

"कैसा ईनाम ? तू कौन है ?" सेठ ने आश्चर्य से उस व्यक्ति को देखकर पूछा।

"कसूर माफ़ करना सेठ जी, मैं वही कल वाला महात्मा हूँ। मैं साधु–वाधु कुछ नहीं, आपका सेवक बहुरूपिया हूँ। अब आप जैसे चतुर आदमी को मैंने धोखा दे दिया तो मुझे अपनी कला का बहुत बड़ा ईनाम मिलना चाहिए।" अपराधी के भाव से बहुरूपिया सिर झुकाए खड़ा था।

सेठ आश्चर्य के मारे आसमान से गिरा। फिर सँभल कर बोला–"ईनाम तो मैं तुझे दूँगा। सचमुच तूने अपने काम में कमाल कर दिया। लेकिन एक बात बता। कल जब मैं अपनी सारी संपत्ति तेरे पास ले आया था तो तूने उसे क्यों नहीं स्वीकार किया ? अगर तू उसे ले लेता तो आज तू सेठ होता। तुझे इस तरह ईनाम माँगने की क्या ज़रूरत रहती ?"

बहुरूपिया नम्रता से बोला–"सेठजी, यह बात मेरे मन में भी आई थी। उस समय सारी संपत्ति लेकर आज मैं कहीं–का–कहीं जा सकता था। फिर मेरे मन ने कहा यह ग़लत है।

मैं संसार त्यागी महात्मा का रूप धारण किए हुए हूँ अगर ऐसा काम करूँगा तो रूप में खोट आ जाएगा। रूप को सच्चा रखने के लिए यह उचित है कि मैं इस संपत्ति को त्याग दूँ। सो सच्चे महात्मा की तरह मैंने उसे त्याग दिया तो लगा कि अब मेरा काम पूरा हो गया। अब आप जो ईनाम मुझे देंगे, ख़ुशी से ले लूँगा।"

"और मेरी सेठानी की बीमारी ?" सेठ ने पूछा।

"उसमें भी मेरा कुछ नहीं है। यह तो आपका और सेठानी का विश्वास और संयोग था।"

सेठ की समझ में सचमुच नहीं आ रहा था कि कैसा यह बहुरूपिया है जो करोड़ों की संपत्ति छोड़कर दो-चार अशर्फ़ियों के ईनाम पर इतना प्रसन्न और संतुष्ट है।

शब्दार्थ

बहुरूपिया	–	कई रूप धारण करने वाला
हूबहू	–	एकदम वैसा ही
भभूत	–	राख
त्रिपुंड	–	तिलक या टीका
कसर	–	कमी
कुटी	–	झोंपड़ी
डेरा लगाना	–	रहना (To Camp)
कीर्ति	–	प्रसिद्धि
खोट	–	दोष
धिक्कारना	–	बुरा भला कहना (To Disdain)
धूनी	–	पवित्र आग
समाधि	–	ध्यान (Meditation)
घनघोर	–	बहुत ज़्यादा
असलियत	–	सच्चाई
मुहर	–	सोने का सिक्का
कलसा	–	घड़ा, कलश

आसमान से गिरना	–	आश्चर्य होना, भ्रम टूटना
पेशा	–	व्यवसाय
जटा	–	उलझे हुए बाल (Matted Hair)
लँगोटी	–	कमर के नीचे का छोटा वस्त्र
पहुँचे हुए	–	महान
यश	–	प्रसिद्धि (Fame)
उपदेश	–	शिक्षा (Precept)
ढोंगी	–	धोखेबाज़
डोली	–	पालकी (Palanquin)
चुटकी	–	Pinch
माया	–	भ्रम, आकर्षण (Illusion)
लोभ	–	लालच (Greed)
झुंड	–	भीड़
जवाहरात	--	बहुमूल्य रत्न (Jewels)
फँसाना	–	To Entrap
कमाल	–	चमत्कार
नम्रता	–	Politeness

प्रश्न:–

1. सेठ अपनी पत्नी को लेकर साधु के पास क्यों गया?

2. साधु ने क्या उपदेश दिया?

3. साधु ने सेठ की संपत्ति क्यों स्वीकार नहीं की?

पाठ – 15
श्रद्धा सर्ग

– जयशंकर प्रसाद

दु:ख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात,
एक परदा यह झीना नील
छिपाए है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान,
यही दुख–सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

(कामायनी से)

शब्दार्थ

रजनी	–	रात
नवल	–	नया
झीना परदा	–	ऐसा पर्दा (Curtain) जिसके दूसरी ओर की वस्तु अस्पष्ट सी दिखाई दे
नील	–	अंधकार
मूल	–	जड़ (root)
मधुमय दान	–	सुंदर व मधुर देन
विकसता	–	विकसित होता, खिलता
प्रभात	–	सवेरा
गात	–	शरीर
ज्वाला	–	(Flame), विषमता, कठिनाइयाँ
स्पंदित	–	कंपित, गतिशील
भूमा	–	अखंड सत्ता (ब्रह्म) जिसमें सब कुछ समाया हुआ है।

प्रश्नः–

1. प्रसाद जी की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

पाठ – 16
नाखून क्यों बढ़ते हैं?

– हजारी प्रसाद द्विवेदी

बच्चे कभी–कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ लिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं। बच्चे कुछ दिन अगर उन्हें और बढ़ने दें, तो माँ–बाप अक्सर उन्हें डाँटा करते हैं, पर कोई नहीं जानता कि वे अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाज़िर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा; उसे नाखून की ज़रूरत थी। उसकी जीवन–रक्षा के लिए नाखून बहुत ज़रूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे–धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (राम चंद्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे) उसने हड्डियों के हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मज़बूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार पाए। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीज़ें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाज़ी मार ली।

इतिहास आगे बढ़ा। पलीते वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़–भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नख–दंतावलंबी जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

ततः किम्! मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन – कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व – वह अपने बच्चों नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि यह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उन्हें काटे जा रहा है। ये कंबख़्त रोज़ बढ़ते हैं क्योंकि ये अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि–कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर – युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह बढ़ती ही जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार–बार थोड़े ही हुआ है। यह उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी–कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हज़ार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि आज से दो हज़ार साल पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था। उनके काटने की कला काफ़ी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े–बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी–अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मावन–शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणिविज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव–चित्त की भाँति मानव–शरीर में भी बहुत–सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि

वे वृत्तियाँ अनायास ही और शरीर के अनजाने में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उनमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उगना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की , मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचता तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है? काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है– किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है ? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से प्रश्न किया है– जानते हो नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ– जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्राय: अंग्रेज़ी के 'इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेज़ी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता-दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है– अपने ही अधीन रहना। अंग्रेज़ी में कहना हो तो 'सेल्फ डिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेज़ी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आज़ादी के जितने भी नामकरण किए-स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता-उन सब में 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही, अनजाने में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणिविज्ञान की बात फिर याद आती है-सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावत: ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाए। हमारे देश के लोग पहली बार यह सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं जो रातों रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक ख़ास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती

हैं। यह ज़रूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हा गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने–आप पर अपने–आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाए रहने वाली 'बँदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए ख़राब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं; जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्व संचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती–झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलने वाली इन जातियों के लिए सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से, अनेक ओर से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है? आहार–निद्रा आदि पशु–सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसलिए मनुष्य झगड़े–टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को ग़लत आचरण मानता है। यह किसी ख़ास जाति या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्य मात्र का धर्म है। महाभारत में इसलिए निर्वैर–भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है:

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।

निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च॥

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिना जाता है (अनुशासन, 120–90)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख–सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म–निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े–बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था–बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो। आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म–पोषण की बात मत सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा– प्रेम ही बड़ी चीज़ है क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ–बूढ़े ने कितनी गहराई में बैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन मरणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। वृहत्तर जीवन में अस्त्र–शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाज़ा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास बिना सिखाए आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से, उस वस्तु को पा भी सकता हैं, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता का नाम

दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए नि:शेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व' निर्धारित आत्म–बंधन का फल है जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

कम्बख़्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

शब्दार्थ

चक्कर में डालना	–	परेशान करना
जूझना	–	संघर्ष करना
ढेला	–	ईंट–पत्थर का टुकड़ा (clod)
वज्र	–	न टूटने वाला
कारतूस	–	बंदूक की गोली (Cartridge)
नखधर	–	नाखून रखने वाले
कम्बख़्त	–	दुर्भाग्यशाली
बर्बर युग	–	Barbarian Age
पाशवी	–	पशु के समान
जीवंत	–	जीता–जागता (Living)
वर्तुलाकार	–	गोल
दंतुल	–	दाँत के आकार का
आलता	–	लाल रंग का द्रव (Liquid)
अधोगामिनी	–	नीचे (अवनति) की ओर ले जाने वाली
प्राणिविज्ञानी	–	Zoologist
सहजात	–	एक साथ उत्पन्न
अनुवर्तिता	–	अनुसरण

नौसिखुआ	–	जिसने अभी–अभी कुछ सीखा हो
पहलू	–	पक्ष (Aspect)
वांछनीय	–	आवश्यक
पूर्व संचित	–	पहले से रखा हुआ
संवेदना	–	भावना, सहानुभूति
टंटा	–	झगड़ा
निर्वैर	–	किसी से शत्रुता न होना
हावी होना	–	नियंत्रण या प्रभाव में लेना
उत्स	–	स्रोत
कमर कसना	–	तैयार होना
तप	–	तपस्या, साधना
चरितार्थ	–	सिद्ध या लागू
अल्पज्ञ	–	कम जानने वाला
सेंध	–	चोरी करने के लिए दीवार में बनाया गया छेद
पछाड़ना	–	हराना
पलीता	–	बारूद (gun powder) में लगाई जाने वाली बत्ती (ignitor)
बमवर्षक	–	बम की वर्षा करने वाले विमान
नखदंतावलंवी	–	नाखून और दाँत पर निर्भर रहने वाला
कोटि	–	करोड़ (Crore)
अवशेष	–	निशान, चिह्न
वृत्ति	–	स्वभाव
विनोद	–	मनोरंजन
चंद्राकार	–	चांद के आकार का
विलासी	–	Pleasure seeker
दाक्षिणात्य	–	दक्षिण भारतीय लोग
मनुष्योचित	–	मनुष्य के लिए उचित
अभ्यासजन्य	–	अभ्यास के कारण पैदा

निर्बोध	–	मासूम (innocent)
स्वराज	–	अपना स्वयं का शासन
महिमामयी	–	गौरवपूर्ण
उत्तराधिकार	–	(inheritance)
अनुसंधित्सा	–	खोज करने की इच्छा
संयम	–	अपने पर नियंत्रण
उद्भावित	–	उत्पन्न
अविवेकी	–	उचित–अनुचित में अंतर न कर सकने वाला
उच्छृंखल	–	uncontrolable
वृहत्तर	–	व्यापक, विशाल
लोहा लेना	–	मुकाबला (सामना) करना
तकाजा	–	मांग
आडंबर	–	दिखावा
निःशेष	–	कुछ भी बाकी न बचना

प्रश्न:–

1. लेखक ने किन–किन अस्त्रों का वर्णन किया है?

2. बूढ़े व्यक्ति (गांधी जी) ने सुख के संबंध में क्या कहा है?

3. लेखक के अनुसार मनुष्य पशु से कैसे भिन्न है?

4. व्याख्या कीजिए–

    सफलता और चरितार्थता ········· की ओर ले जाती है।

पाठ – 17

पथ की पहचान

– हरिवंश राय 'बच्चन'

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले,
पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की जबानी,
अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,
पर गए कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी
यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान करले,

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले।

यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
जब असंभव, छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना

तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी,

सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,

हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान करले।

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले।

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग़, वन सुंदर मिलेंगे,

किस जगह यात्रा ख़त्म हो
जाएगी यह भी अनिश्चित,

है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,
कौन सहसा छूट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा,
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन करले,
पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले।

(सतरंगिनी से)

शब्दार्थ

बटोही	–	यात्री, मुसाफिर
जबानी	–	मुख से
मूक	–	खामोश
चित्त	–	मन
पंथ	–	मार्ग
शर	–	वाण
गह्वर	–	खाई
आन	–	प्रण
बाट	–	मार्ग, रास्ता
राही	–	यात्री
पंथी	–	यात्री, चलने वाला
पग	–	कदम
अवधान करना	–	एकाग्र करना, स्थिर करना
कंटक	–	काँटा

प्रश्न :–

1. इस कविता का केंद्रीय भाव लिखिए।

2. इस कविता में 'मार्ग' तथा 'यात्री' के लिए किन–किन पर्यायों का प्रयोग किया गया है?

3. विस्तार से समझाइए–

(क) "पर गए कुछ लोग इस पर छोड़ पैरों की निशानी,
यह निशानी मूक होकर भी बहुत कुछ बोलती है"

(ख) "किस जगह यात्रा खत्म हो जाएगी यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित कब सुमन कब कंटकों के शर मिलेंगे"

4. बच्चन जी की काव्य कला का संक्षेप में वर्णन कीजिए

पाठ – 18

भारत की सांस्कृतिक एकता

– गुलाबराय

देश राष्ट्रीयता का एक आवश्यक उपकरण है। हमारी राष्ट्रीयता को चुनौती देने के निमित्त उत्तर–दक्षिण, अवर्ण–सवर्ण, हिंदू, मुसलमान, सिख–ईसाई, जैन आदि के भेद खड़े करके हमारी संगठित इकाई को क्षति पहुँचाई गई। भाषा का बवंडर उठाया गया ताकि आपसी झगड़ों और भेदभाव में हमारी शक्ति का ह्रास हो और विदेशी शासकों का राज्य अटल बना रहे।

पहले तो प्रायः सभी देशों में जाति, भाषा और धर्मगत भेद हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी कई जातियाँ हैं। वहाँ भाषाएँ भी कई बोली जाती हैं किंतु एक केंद्रीय भाषा सबको मिलाए हुए है। स्विटज़रलैंड में जर्मन, फ्रांसीसी तथा इतालवी तीन भाषाएँ बोली जाती हैं, फिर भी वह एक सुसंगठित राष्ट्र है। इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया एक भाषा–भाषी होते हुए भी भिन्न–भिन्न राष्ट्र हैं।

संपन्नता भेदों में भी है, किंतु भेद इतने न होने चाहिए कि उनमें सामंजस्य न रहे। मनुष्य अपने अवयवों के बाहुल्य और उनके समायोजन और संगठन के कारण जीवधारियों में सबसे अधिक विकसित और श्रेष्ठ गिना जाता है।

भेदों के अस्तित्व से इंकार करना मूर्खता होगी और उनकी उपेक्षा करना अपने को धोखा देना होगा। हमारे समाज में भेद और अभेद दोनों ही हैं। हमारे पूर्व शासकों ने अपने स्वार्थवश हमारे भेदों को अधिक विस्तार दिया। जिससे हमारे देश में फूट पनपे और इस भेद–नीति से उनका उल्लू सीधा हो। हमारी अखंडता की उपेक्षा की गई या उनको नगण्य समझा गया। हममें हीनता की मनोवृत्ति पैदा हो गई। देश की नदियाँ, जिनको विभाजन रेखाएँ

कहा जाता है, हमारी भूमि को उर्वरा, शस्य-श्यामला बनाती हैं। हमारी भौगोलिक इकाई हिमालय पर्वत और सागर से है। उसे छिन्न-भिन्न किया गया है। इसमें कुछ राजनीतिक स्वार्थ भी सहायक हुए। प्राचीन काल में राष्ट्रीयता की धारा अबाधित सी नहीं रही है, आंतरिक द्वेष कभी-कभी प्रबल हो उठे हैं, किंतु भारतवासी एक छत्र सार्वभौम राज्य से अपरिचित न थे। राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञ ऐसे ही राज्य की स्थापना के ध्येय से किए जाते थे। इनके द्वारा टूटी हुई राष्ट्रीय एकता जुड़कर अविरल धारा का रूप धारण कर लेती थी।

राजनीति की अपेक्षा धर्म और संस्कृति मनुष्य के हृदय के अधिक निकट हैं। यद्यपि राजनीति का संबंध भौतिक सुख-सुविधाओं से है, फिर जन-साधारण जितना धर्म से प्रभावित होता है उतना राजनीति से नहीं। हमारे भारतीय धर्मों में भेद होते हुए भी उनमें एक सांस्कृतिक एकता है जो उनके अविरोध की परिचायक है। वही त्याग और तप एवं मध्यम मार्ग की संयम की भावना हिंदू, बौद्ध, जैन और सिख संप्रदायों में समान रूप से वर्तमान है। एक धर्म के आराध्य दूसरे धर्म के महापुरुष के रूप में स्वीकार किए गए हैं। भगवान बुद्ध तो अवतार ही माने जाते हैं। "कलियुगे कलिप्रथम-चरणे बुद्धावतारे" कहकर प्रत्येक धार्मिक संकल्प में हम उनका पुण्य स्मरण कर लेते हैं। भगवान ऋषभदेव का श्रीमद्भागवत में परम आदर के साथ उल्लेख हुआ है। जैन धर्म-ग्रंथों में भगवान राम और कृष्ण को तीर्थंकर नहीं तो उनसे एक श्रेणी नीचे का स्थान मिला है। अन्य देवी-देवताओं को भी उनके देवमंडल में स्थान मिला है। भारत में उद्भूत प्रायः सभी धर्म आवागमन में विश्वास करते हैं।

मैत्री, करुणा, मुदिता और अपेक्षा की शिक्षा हिंदू, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से प्रतिष्ठित है। स्वास्तिक चिह्न और ओंकार मंत्र हिंदुओं और जैनों में समान रूप से प्राप्त है। कमल और हाथी तथा अश्वत्थ वृक्ष (पीपल), बौद्धों और हिंदुओं में एक रूप से पूजनीय माने जाते हैं। जैनों के पंचशील प्रायः एक हैं। पारसियों और हिंदुओं में अग्नि की पूजा समान रूप से होती है। जेंदावेस्ता की गाथाओं और वैदिक ऋचाओं में भाषागत समानता है। पारसी लोग गोमांस नहीं खाते।

सिख गुरुओं ने हिंदू धर्म की रक्षा में योग ही नहीं दिया वरन् उनके लिए कष्ट और अत्याचार भी सहे। उन्होंने, विशेषकर गुरुनानक और गोविंद सिंह ने, हिंदी में कविता की है। उनके धर्मों में राम-नाम की महिमा गाई गई है । गुरु गोविंद सिंह ने चंडी, दुर्गादेवी का भी स्तवन किया है। "गुरु ग्रंथ साहब" में कबीर आदि महात्माओं की वाणी आदर के साथ सुरक्षित है, उनका नित्य पाठ भी होता है। सिखों के गुरु लोग हमारे संतों में अग्रणी समझे जाते हैं और उनका आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

मुसलमान और ईसाई धर्म एशियाई धर्म होने के कारण भारतीय धर्मों से बहुत कुछ समानता रखते हैं। यूरोप से भी पहले ईसाई धर्म को दक्षिण भारत में स्थान मिला है। कुछ लोगों का तो कहना है कि स्वयं ईसा ने भारत में ही शिक्षा पाई थी। "दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो" ईसा मसीह का यह कथन महाभारत के "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" का ही पर्याय है। ईसाइयों की क्षमा और दया बौद्ध धर्म से मिलती-जुलती है। मैं यह नहीं कहता कि किसने किससे लिया, परंतु इन मौखिक सिद्धांतों में हिंदू, बौद्ध और ईसाई धर्मों में समानता है। रोमन कैथोलिकों की पूजा अर्चना, धूप-दीपक, व्रत-उपवास आदि हिंदुओं के से हैं।

मुसलमानों और ईसाइयों ने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया है और वे यहाँ की संस्कृति से प्रभावित हुए हैं। भारतीय सूफ़ी-कवियों ने वेदांत की भाव-भूमि को अपनाया है और उनके ग्रंथों में हिंदू परंपराओं, कथाओं, विचारों, देवी-देवताओं और प्रतीकों के समावेश हुए हैं। तानसेन और ताज पर हिंदू-मुसलमान समान रूप से गर्व करते हैं। जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन आदि अनेक मुसलमान कवियों ने अपनी वाणी में हिंदी साहित्य की रसमयता बढ़ाई है। रसखान के सवैये तो सचमुच रस की खान हैं।

प्राचीन काल से भारतीय धर्म और साहित्य ने राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया है। सभी काव्य-ग्रंथ, चाहे वे उत्तर के हों, चाहे दक्षिण के, रामायण और महाभारत को अपना प्रेरणा स्रोत बनाते रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य उत्तर-दक्षिण में समान रूप से मान्य हैं। कालिदास के 'रघुवंश' और भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में उत्तर और दक्षिण के प्राकृतिक दृश्यों का बड़ी रसमयता के साथ वर्णन आया है।

हिंदू तीर्थाटन में धार्मिक भावना के साथ राष्ट्रीय भावना भी निहित है। शिवभक्तों द्वारा ठेठ उत्तर की गंगोत्री से गंगा जल लाकर दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथ और पश्चिम में द्वारिकापुरी में चढ़ाने से भारत की चारों दिशाओं की पूजा हो जाती है।

भारत की सात पुरियाँ पवित्र और मोक्षप्रद मानी गई हैं। इनकी भी यात्रा की जाती है और प्रातः स्मरण भी किया जाता है। इनके नाम हैं-अयोध्या, मथुरा, माया द्वार (हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका, (उज्जयिनी) और द्वारावती (द्वारिका)

स्वामी शंकराचार्य ने भारत की चारों दिशाओं में अपने मठ स्थापित किए थे। उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में श्रृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ और पश्चिम में शारदा मठ। ये भगवान शंकराचार्य की दिग्विजय के कीर्तिस्तंभ ही नहीं वरन् भारत की एकता के भी परिचायक चिह्न हैं। दक्षिण के अन्य प्राचार्यों के संप्रदाय अविरोध भाव से उत्तर में फूले-फले और विकसित हुए।

बंगाल के चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय ने भी मथुरा-वृंदावन में अपनी शिष्य-परंपरा स्थापित की। इन संप्रदायों के मंदिर बने और इनकी पूजा अर्चना ने उत्तर प्रदेश के जीवन और साहित्य को प्रभावित किया। हिंदी साहित्य गगन के सूर्य और शशि स्वरूप सूर और तुलसी दक्षिण के संप्रदायों से ही प्रभावित थे। ये सब एकता के सूत्र प्राचीन थे, पश्चिम की सौगात न थे, किंतु उनकी उपेक्षा की गई। अब भाषा का प्रश्न आता है। उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। इनमें पारिवारिक समानता है। दक्षिण की भाषाएँ भी संस्कृत से प्रभावित हुई हैं। उन्होंने भी थोड़ी बहुत मात्रा में संस्कृत की शब्दावली ग्रहण की, किसी ने थोड़ी तो किसी ने बहुत। उर्दू को छोड़कर प्रायः सभी भाषाओं की वर्णमाला एक नहीं तो एक सी हैं। केवल लिपि का भेद है। मराठी और देवनागरी की लिपि भी समान है। संस्कृत की परिनिष्ठित लिपि होने के कारण देवनागरी प्रायः सभी प्रांतों में पहचानी जाती है। उर्दू का लिपि भेद होते हुए भी हिंदी के साथ भाषा में साम्य है। भाषा की ज़मीन और व्याकरण प्रायः एक से हैं। बेल-बूटे फ़ारसी-अरबी के हैं। प्रेमचंद, सुदर्शन, कृशनचंदर आदि ने हिंदी में भी लिखा है और उर्दू में भी। भारत की प्रायः सभी भाषाओं का साहित्य भगवान राम और कृष्ण की पावन गाथाओं से आप्लावित रहा है। सभी ने संतों और वीरों का स्तवन किया है, सभी भाषाओं के साहित्य ने स्वतंत्रता की लड़ाई में योगदान किया है। भाषाओं का भेद होते हुए भी विचारों की एकध्येयता रही है।

भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का धूमिल इतिहास घुला-मिला सा प्रतीत होता है। उनके बीच कोई अभेद्य दीवार न थी। मीरा गुजराती और हिंदी में समान रूप से कवयित्री मानी जाती हैं। मीरा के गीतों से बंगाल भी प्रभावित हुआ है। भूषण की वाणी का महाराष्ट्र में भी आदर हुआ था। संत तुकाराम आदि महाराष्ट्र के संतों ने अपनी कविता में हिंदी को भी अपनाया। विद्यापति समान रूप से हिंदी, मैथिली और बंगला के कवि माने जाते हैं। कबीर, दादू आदि संतों का व्यापक प्रभाव रहा है। उन्होंने अपने एकतारे की तान में सारे भारत को बाँध दिया। तुलसीकृत रामचरित का मराठी और बंगला में भी अनुवाद हुआ। सूरदास के भजनों को प्रायः सभी प्रांतों के कवियों ने अपनाया। बंगला के 'वंदेमातरम्' और 'जन-गण-मन' राष्ट्रीय गान बने। वेश-भूषा, रहन-सहन, और शक्ल-सूरत में भेद होते हुए भी भारतवासी अपने जातीय व्यक्तित्व से पहचान लिए जाते हैं।

हमारा एक जातीय व्यक्तित्व है। वह हमारी जातीय मनोवृत्ति, जीवन-मीमांसा, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, उठने-बैठने के ढंग, चाल-ढाल, वेश-भूषा, साहित्य, संगीत और कलाओं में अभिव्यक्त होता है। विदेशी प्रभाव पड़ने पर भी वह बहुत अंशों में अक्षुण्ण बना हुआ है। वही हमारी एकता का मूल सूत्र है।

शब्दार्थ

उपकरण	–	अंग
अवर्ण	–	नीची जाति
ह्रास	–	कमी
बाहुल्य	–	अधिकता
समायोजन	–	Adjustment
उपेक्षा	–	अवहेलना
मनोवृत्ति	–	भावना
शस्य श्यामल	–	हरी–भरी
सार्वभौम	–	सर्वव्यापक, Universal
अविरल	–	निरंतर, लगातार
परिचायक	–	प्रकट करने वाला
आराध्य	–	जिनकी पूजा की जाती है
उद्भूत	–	उत्पन्न
स्तवन	–	महिमा का वर्णन
भाव भूमि	–	विचारधारा
समावेश	–	शामिल
चुनौती देना	–	चेतावनी देना, To Challenge
सवर्ण	–	ऊँची जाति
बवंडर	–	तूफ़ान,
संपन्नता	–	समृद्धि, Prosperity
जीवधारी	–	प्राणी
फूट	–	भेद
भेदनीति	–	अंतर पैदा करने का तरीका
उर्वरा	–	उपजाऊ
अबाधित	–	बिना रुकावट के
द्वेष	–	दुश्मनी, शत्रुता
भौतिक	–	सांसारिक
मध्यम मार्ग	–	बीच का रास्ता

देवमंडल	–	देवताओं का समूह
मुदिता	–	प्रसन्नता
अग्रणी	–	श्रेष्ठ
प्रतीक	–	चिह्न, Symbol
निहित	–	शामिल
ठेठ	–	मूल
मठ	–	आश्रम
साम्य	–	समानता
आप्लावित	–	पूर्ण, भरा हुआ
मोक्षप्रद	–	मुक्ति देने वाली
परिनिष्ठित	–	शुद्ध
अभेद्य	–	जिसे भेदा न जा सके
अक्षुण्ण	–	स्थाई

प्रश्न:–

1. सिख गुरुओं का हिंदू धर्म में क्या योगदान है?

2. भारत की भाषाओं में किस प्रकार से एकता पाई गई है?

3. स्पष्ट कीजिए–
   (क) संपन्नता भेदों में भी है, किंतु भेद इतने न होने चाहिए कि उनमें सामंजस्य न रहे।
   (ख) राजनीति की अपेक्षा धर्म और संस्कृति मनुष्य के हृदय के अधिक निकट हैं।
   (ग) हमारे पूर्व शासकों ने अपने स्वार्थवश हमारे भेदों को अधिक विस्तार दिया।

पाठ –19

उड़ चल, हारिल

– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

उड़ चल; हारिल, लिए हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका।
ऊषा जाग उठी प्राची में–
कैसी बाट, भरोसा किन का!

शक्ति रहे तेरे हाथों में–
छुट न जाए यह चाह सृजन की,
शक्ति रहे तेरे हाथों में–
रुक न जाए यह गति जीवन की!

ऊपर–ऊपर–ऊपर–ऊपर
बढ़ा चीरता चल दिग्मंडल:
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल!

तिनका? तेरे हाथों में है
अमर एक रचना का साधन–
तिनका ? तेरे पंजे में है
विधना के प्राणों का स्पंदन!

काँप न, यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है,

रुक न, यदपि उपहास जगत् का
तुझको पथ से हेर रहा है;

तू मिट्टी था, किंतु आज
मिट्टी को तूने बाँध लिया है,
तू था सृष्टि, किंतु स्रष्टा का
गुर तूने पहचान लिया है!

मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है?
तू मिट्टी, पर मिट्टी से
उठने की इच्छा किसने दी है?

आज उसी ऊर्ध्वंग ज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वज-दंड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा!

मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है;
जीवन-साधन की अवहेला
कर्मवीर का कर्म नहीं है !

तिनका पथ की धूल, स्वयं तू
है अनंत की पावन धूली-
किंतु आज तूने नभ-पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली!

ऊषा जाग उठी प्राची में-
आवाहन यह नूतन दिन का:
उड़ चल, हारिल, लिए हाथ में
एक अकेला पावन तिनका!

(चुनी हुई कविताएँ)

शब्दार्थ

हारिल	–	एक प्रकार का पक्षी
प्राची	–	पूर्व दिशा
सृजन	–	निर्माण
विधना	–	निर्माता
हेरना	–	विचलित करना
गुर	–	तरीका (Formula)
हरकारा	–	संदेशवाहक (Postman)
अवहेला	–	अवहेलना, उपेक्षा
आवाहन	–	आगमन
ओछा	–	तुच्छ, महत्वहीन
बाट	–	प्रतीक्षा, इंतज़ार
दिग्मंडल	–	चारों दिशाएँ
तिनका	–	तृण (Straw)
स्पंदन	–	कंपन
स्रष्टा	–	बनाने वाला, सृजन करने वाला
ऊर्ध्वंग	–	ऊपर की ओर उठा हुआ
दुर्निवार	–	कठिन
तज देना	–	त्याग देना
कर्मवीर	–	कर्म को सबसे ज्यादा महत्व देने वाला

प्रश्न:–

1. कवि ने कविता के प्रारंभ में 'तिनके ' को 'ओछा' कहा है और अंत में 'पावन'। क्यों?
2. हारिल के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?
3. इस कविता का सारांश लिखिए।

पाठ – 20
चित्रांगदा

लेखक– रवींद्रनाथ टैगोर
अनुवादक– भारत भूषण अग्रवाल

(यह कथा मणिपुर की राजकन्या चित्रांगदा की है जो शिवजी के वरदान से जन्मी थी। राजा ने उसे पुत्र की तरह पाला तथा शासन नीति और युद्ध कला की शिक्षा दी। एक दिन उसे एक ऐसा पुरुष मिला जिसने उसे देखा तक नहीं। इस उपेक्षा से वह दुखी हुई। वह पुरुष अर्जुन था।

तब चित्रांगदा ने तपस्या करके कामदेव और बसंत से एक वर्ष के लिए ऐसे दिव्य सौंदर्य और यौवन का वर पा लिया जिसके आकर्षण से कोई भी पुरुष न बच सके। इस बार अर्जुन उसके रूप और यौवन पर मोहित हो ही गया। लेकिन उसे यह नहीं मालूम हो पाता कि ये वही राजकुमारी चित्रांगदा है जिसके गुणों और बहादुरी की चर्चा चारों ओर है। अर्जुन चित्रांगदा से मिलने को बेचैन रहता है। एक वर्ष की अवधि बीत जाने पर वह अर्जुन को अपना परिचय देती है और कहती है कि वह न तो पूजनीय है और न ही उपेक्षणीय। वह सिर्फ़ एक नारी है जो शक्ति का स्वरूप होती है जिसके बिना पुरुष न तो पूर्ण है और न सफल।)

पात्र : चित्रांगदा और अर्जुन

चित्रांगदा : मैं ही राजकुमारी चित्रांगदा हूँ।
शायद तुम्हें याद हो,

उस दिन
उस सरोवर के किनारे
शिवालय में तुम्हें एक नारी दिखाई पड़ी थी,
अपनी रूपहीन देह को
आवरणों के भार से लदे हुए
उस निर्लज्ज मुखरा नारी ने
न जाने क्या-क्या कहा था।
पुरुष-रीति से ही पुरुष की आराधना की थी।
तुमने उसका प्रत्याख्यान किया था।
अच्छा ही किया!
यदि उस सामान्य नारी-रूप में ही
तुम उसे ग्रहण कर लेते
तो अनुताप के मारे
आजीवन उसकी छाती दहकती रहती।

प्रभु !
मैं वही नारी हूँ।
फिर भी
मैं वह नारी नहीं हूँ
वह तो मेरा हीन छद्मवेश था।
उसके बाद

बसंत के वरदान से
मैंने वर्ष-भर के लिए
अपरूप रूप भार से
मैंने वीर का हृदय श्रांत कर दिया।
पर वह भी मैं नहीं भी।
मैं चित्रांगदा हूँ।
मैं देवी नहीं हूँ,
न मैं सामान्य रमणी हूँ।

पूजा करके सिर पर बैठाओ,
ऐसी भी मैं नहीं हूँ,
और उपेक्षा से पाल कर
पीछे-पीछे चलाओ,
ऐसी भी नहीं हूँ।

यदि तुम संकटमय पथ पर
मुझे अपनी बगल में रखोगे,
जटिल चिंता में मुझे भाग लेने दोगे,
कठिन व्रत में सहायता करने की अनुमति दोगे,
यदि सुख में, दुख में
मुझे अपनी संगिनी बनाओगे,
तभी तुम मेरा सही परिचय पा सकोगे।

तुम्हारी जिस संतान को
मैंने गर्भ में धारण किया है,
यदि वह पुत्र हुआ
तो उसे शैशव में वीरोचित शिक्षा देकर
द्वितीय अर्जुन बनाकर
जब मैं एक दिन
उसके पिता के चरणों में भेजूँगी–
तभी तुम मुझे जान सकोगे, प्रियतम!
आज तो
चरणों में बस इतना ही निवेदन है
कि मैं राजकुमारी चित्रांगदा हूँ।

अर्जुन : आज मैं धन्य हूँ प्रिये!

शब्दार्थ

दिव्य	–	अलौकिक
मोहित	–	आकर्षित
सरोवर	–	तालाब
शिवालय	–	शिव का मंदिर
प्रत्याख्यान	–	विरोध
छद्मवेश	–	नकली वेश

श्रांत करना	–	थका देना
वर	–	वरदान
उपेक्षणीय	–	नफ़रत, घृणा के लायक
मुखरा	–	अधिक बोलने वाली
अनुताप	–	पछतावा
अपरूप	–	असुंदर
शैशव	–	शिशुकाल

प्रश्न :–

1. अर्जुन को चित्रांगदा का सही परिचय कैसे मिलेगा ?